वितस्ता

146

सम्पादक

डा० रमेशकुमार शर्मा

हिन्दी परिषद
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
जम्मू-कश्मीर विश्व विद्यालय (कश्मीर मण्डल) श्रीनगर
की
मुख-पत्रिका

शारद अङ्क
खण्ड ५, अङ्क १

क्रम

'वलो हा बागबानो'	कविवर 'महजूर' की एक राष्ट्रीय रचना
कश्मीरी भाषा	त्रिलोकीनाथ गंजू एच. एच. एच. एस. बी. एड. एम. ए (अनुसंधित्सु)
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन	नज़ीर 'अकबराबादी', (पुण्यतिथि सं० १८२७)
अस्तित्ववाद का कुहासा और मानव-व्यक्तित्व	रतनलाल 'शान्त' प्रा० हि० विभाग अमरसिंह कालेज, श्रीनगर
डूबता हुआ शहर	शशिशेखर तोषखानी एम. ए. (अनुसंधित्सु)
'प्राचीन शास्त्रों में कश्मीर का वर्णन'	बद्रीनाथ कल्ला एम. ए. शास्त्री, बी. एड.
मोतियों का भार	नैन्सी दर एम. ए. (उत्तरार्द्ध)
दुहरी टूटन	डॉ० मुहम्मद अयूबखाँ 'प्रेमी'
जी भर सा आता है	वासन्ती जाला एम. ए. (उत्तरार्द्ध)
कश्मीरी लोक-गीत	डॉ० भूषणलाल कौल
कैसा लगा	डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय रीडर, हिन्दी-विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
"परिषद् के चक्कर में"	सन्तोष ज़ारू एम. ए. (अनुसंधित्सु)
'क्यों'	विजयमोहिनी कौल एम. ए. (उत्तरार्द्ध)
कश्मीरी भाषा के शब्द वातायन से	त्रिलोकीनाथ गंजू एम.ए. बी. एड.(अनुसंधित्सु)

सम्मतियाँ

हिन्दी-परिषद् १९६७-६८ की गतिविधियाँ	नीना कौल मंत्री
विजुरिया	श्री घनश्याम अस्थाना प्रा० अंग्रेजी विभाग आगरा कालेज, आगरा
"प्रस्तर-प्रतिमा"	कौशल्या चुल्लू एम. ए. (पूर्वार्द्ध)
ये बोझे—भीतर के	डॉ० रमेशकुमार शर्मा
एक खत ; वादी के नाम	शामा सौंधी भू० पू० कोषाध्यक्ष, हिन्दी परिषद
सोनमर्ग में कुछ क्षण	श्री रामदत्त शर्मा प्रा. ज. प्र. विभाग, जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

सम्पादकीय

पं. त्रिलोकीनाथ गंजू
को सस्नेह
[signature]
२६/१२/१९६९

वितस्ता

(१९६९–शरदङ्क)

यो विश्वचक्षुरुत विश्वतो
मुखो विश्वतो हस्त
उत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां नमते
सं पतत्रैर्द्यावापृथवी
जनयन् देव एकः

विश्वतश्चक्षुर् उत विश्वतोमुखो
विश्वतोबाहुर् उत विश्वतस्पात् ।
स बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्
द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ ऋ १०/८१/३

[वह जिसके सब ओर नेत्र हैं और सब ओर मुख हैं; सब ओर भुजाएँ और सब ओर पैर हैं; वह एक भगवान् (देवता) आकाश तथा पृथ्वी को उत्पन्न करता हुआ उन्हें अपनी पंख समान भुजाओं से एक करता है।]

कविवर 'महजूर' की
एक राष्ट्रीय-रचना

'वलो हा बागबानो'

*

वलो हा बागबानो नव-बहारूक शान पैदाकर
फोलन गुल गंथ करन बुलबुल तिथुई सामान पैदाकर
चमन वीरान रिवान शबनम छंटिथ् जामॅ परेशान गुल
गुलन तं् बुलबुलन अन्दर दुबारा जान पैदाकर
करी कुस बुलबुला आजाद पिंजरस मंज़ छि् नालान छुक
छि् पॅनिने दस्ति पॅनिन्यन मुशकिलन आसान पैदाकर
छि बागस जानवर बोलान मगर आवाज़ छंकि ब्योनि-ब्योनि
यिहिन्दिस आलवस यारब असर यक्सान पैदाकर
अगर बुज़िनावहन बस्ती गुलन हिजं त्राव ज़ेरोबम
बुन्यल कर, वाव कर, गंगिराय करं तूफान पैदाकर
ज़मीनस शारीहिन्दिस करिथ् महजूरि गुल पैदा
वंनि अथ् रंगीन बागस बुलबुले-नालान पैदाकर ।

अरे माली, आ ! नव-वसन्त के सौन्दर्य से तू भी अपने उपवन का शृंगार करले । नव-वसन्त की नवीन आभा चारों ओर बिखेर दे । फूल खिल उठेंगे और 'बुलबुल' उन्हें देखकर मस्त हो जाएगा और झूम उठेगा । इस समय उपवन की क्यारियाँ अस्त-व्यस्त दशा में पड़ी हैं। उपवन के इस वैधव्य पर ओस आँसू बहा रही है और पुष्प भी चिन्तित हैं । तू पुनः इन पुष्पों एवं बुलबुलों में नवीन प्राण फूँक दे ।

हे बुलबुल ! तुझे लौह—शृंखलाओं से कौन मुक्ति दिला सकता है ।

तू यों पिंजरे में कराह रहा है तुझे स्वयं अपने हाथों अपनी कठिनाइयों को दूर करना होगा।

बाग में पक्षी बोल रहे हैं परन्तु उनकी आवाज़ भिन्न-भिन्न है। मेरे ईश्वर! इनकी आवाज़ में एकता भर दे, वे संगठित हो जाएँ।

यदि तू गुलों की बस्ती (देशवासियों) को जागृत करना चाहता है तो रागरंग एवं भोग-विलास को तिलांजलि देकर भूचाल ला, आँधी मचा, गर्जना कर, तूफान को जन्म दे।

महजूर! काव्य-भूमि में तूने अनेकों गुल खिलाये। अब तनिक इस रंगीन-उपवन में चहकता हुआ बुलबुल पैदा कर दे।

(अनुवादक : डॉ० भूषणलाल कौल)

'कोई गुप्त बात जब तक गुप्त है तुम्हारी दास है; जब खुल जाती है तो तुम उसके दास हो जाते हो'।

—एक अरब कहावत

● ● ●

कदी आ मिल यार पियारियाँ, तेरियाँ वाटाँ तो सिर वारियाँ।
चढ़ वागी कोयल कूकदी, नित सोज अमल दी फुक दी
मैनू ततड़ी नू श्याम बिसारियाँ॥
बुल्ला शह कदी घर आवसी मेरे बलदी भाह वुझावसी
तोरियाँ वारां तो सिर वारियाँ॥

—बुल्लेशाह

● ● ●

'पर-निन्दा आत्मप्रशंसा का ही एक बेईमान तरीक़ा है'

—विल ड्यूरां

त्रिलोकीनाथ गंजू
एच. एच. एच. एस., बी. एड.
एम० ए० (अनुसंधित्सु)

※

कश्मीरी भाषा

कश्मीरी भाषा के स्वरूप के विस्तृत अध्ययन की कुछ मूलभूत समस्याएँ हैं, जिनके कारण इस भाषा का वास्तविक एवं स्पष्ट अध्ययन आज तक नहीं हो सका है। श्री ग्रियर्सन कश्मीरी भाषा के प्रथम शोधक हैं जिन्होंने अपने विशालकाय भाषा वैज्ञानिक ग्रन्थमाला के आठवें भाग और द्वितीय-खण्ड में इस भाषा पर अपना मंतव्य व्यक्त किया है। पर दुर्भाग्य की बात यह है कि स्वयं ग्रियर्सन कश्मीरी भाषा के ज्ञाता नहीं रहे और न उन्हें इस भाषा के मर्म तत्त्वों का विशद ज्ञान ही था। उनके सहायकों ने जो सामग्री उन्हें एकत्रित कर के दी उसी के आधार पर उन्होंने इस भाषा का कलेवर खड़ा किया। उनके दृष्टिकोण से यह भाषा दरद गोत्रजा है। वास्तव में दरद भाषा आर्य भाषा का ही संमिश्रित उपकुल है जिसमें आर्येतर संकरता का प्रभाव स्पष्ट है। लेकिन दरद और कश्मीरी भाषा में महान् अन्तर है, जो आगे चलकर स्पष्ट किया जायेगा। सबसे बड़ी बात यह है कि दरद भाषा में 'र' ध्वनि की इकाई शब्द समूह में परिव्याप्त है जबकि कश्मीरी में नहीं। साथ ही जहाँ कश्मीरी भाषा में सरलता के लिये स्वर को दीर्घ व्यंजन वर्ण में परिवर्तित किया जा सकता है वहाँ दरद भाषा के अन्तर्गत ऐसा नहीं किया जा सकता। निस्संदेह श्री ग्रियर्सन ने कश्मीरी भाषा का शब्द कोष म० म० श्री मुकन्दराम शास्त्री की सहायता से वनाया पर यदि उनके ही लेख-कोष का आलोचनात्मक अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होगा कि शब्दों के अनुपात को मूलरूप में उन्होंने तत्सम क्षेत्र में ही सम्मिलित किया है। यह व्यंग्य नहीं, जीवित सत्य है।

श्री ग्रियर्सन ने कश्मीरी भाषा के विशेष अध्ययन के लिए सिद्धा लल्लीश्वरी के गेय वाक्यों को ही सान्निध्य में रखा और उस पर एक स्वतंत्र ग्रन्थ की रचना भी की। पर, लल्लीश्वरी के पद अथवा वाक्य श्री ग्रियर्सन तक गेय ही रहे उनको लिपि-बद्ध उन्होंने स्वयं किया। स्वीकृत सत्य यह है कि लल्लीश्वरी के वाक्य आल्हा-खण्ड की तरह शतकों से गेय रहे हैं और काल के क्रमिक विकास के साथ-साथ उनकी भाषा बदलती रही है, 'नवीन' भाषात्मक आवरण चढ़ता रहा है और यह क्रम किसी भी संकेत के बिना जारी रहा है। दूसरी बात यह विचारणीय है कि कश्मीरी भाषा के देश-काव्य बहुत रहे हैं। इसका उल्लेख श्री क्षेमेन्द्र ने अपने 'देशोपदेश-नर्ममाला' नामक ग्रन्थ में किया है।

"ततः क्षीवो गुरू: कंचित्स्वकाव्यं देशभाषया"[१]
"देश भाषा पदैर्मिश्रमधुना क्रियते मया"[२]

प्राचीन कश्मीरी भाषा के अध्ययन के लिए श्री राजानक शितिकण्ठ का "महानय-प्रकाश" वास्तव में कश्मीरी भाषा की चिरंतन पूँजी है। यदि ग्रियर्सन, (जो वस्तुतः इस ग्रन्थ से परिचित थे) इसका शोधकार्य करते तो संभवतः वह इस प्रकार की भ्रान्ति के पात्र कभी नहीं होते। राजानक शितिकण्ठ का समय ईसा की दशवीं शती के आस-पास ही होना चाहिए। श्री ग्रियर्सन की शोध के उपरान्त कश्मीरी भाषा के दो महाकाव्य श्री युध भट्ट कृत "सुख-दुख चरित्र" और श्री अवतार भट्ट कृत "बाणासुर-वध" उपलब्ध हुए हैं। श्रीअवतार भट्ट ने अपने "बाणासुर-वध" कश्मीरी काव्य में स्पष्टतः अपने समय का उल्लेख करते हुए लिखा है कि यह काव्य मैंने कश्मीर नरेश जैन-उल-आब्दीन के समय में निर्मित किया है।[३] जैन-उल-आब्दीन का समय ईस्वी १४२० है। इन दो महाकाव्यों के अध्ययन के उपरान्त कश्मीरी भाषा का केवल स्वरूप ही स्पष्ट नहीं होता बल्कि साथ ही साथ इसकी विशद संस्कृत तत्समता और भाषात्मक भ्रान्ति भी स्पष्ट होती है। श्री ग्रियर्सन ने कश्मीरी भाषा का विशेष अध्ययन न होने के कारण लल्लीश्वरी

१ नर्ममाला-वृद्धवणिक्, ८१।
२ देशोपदेश अष्टम उपदेश, १।
३ दे० श्री अवतार भट्ट विरचित "बाणासुर-बध "महाकाव्य पाण्डुलिपि" पूना इंस्टीट्यूट।

के गेय पदों में सघोष व्यंजनों के स्थान पर समान अघोष व्यंजनों का प्रयोग तथा स्वर मध्यम स्पर्श व्यंजनों का लोप न देखकर यह धारणा बना ली कि कश्मीरी भाषा मूलतः दरद गोत्रजा है।

भाषा और इतिहास आपस में पूर्णतया संश्लिष्ट होते हैं। इस दृष्टिकोण को सामने रखकर हमें कश्मीर के विभिन्न युगों के इतिहास की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। कश्मीर का इतिहास सप्तर्षि संवत् ६२८ से आरम्भ होता है। इस समय सप्तर्षि संवत ५०४५ है। तात्पर्य यह है कि कश्मीर के इतिहास का मूल आज से ४३१६ वर्ष पूर्व का इतिहास है, जिसका परिचय हमें श्री कल्हण की 'राजतरंगिणी' में गोनन्द प्रथम से उपलब्ध होता है। कल्हण ने अपने प्राचीन इतिहासकारों के ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन और मनन किया। वह उस युग के प्रथम इतिहासकार हैं जिन्होंने सहर्ष यह स्वीकार किया है कि 'पार्थिवावली' उन्हें उपलब्ध नहीं हुई। अतः कल्हण ने सुरथ, क्षेमेन्द्र, हेलराज, पद्ममिहर, तथा छविलाकर का पूर्ण मनन किया। इसके पूर्व की कृति नीलमुनि का 'नीलमत पुराण' है। नीलमुनि का इतिवृत्त कश्मीर के इतिहास की चिरंतन कड़ी है। नील ने ही सर्व-प्रथम यहाँ का आदिम इतिहास और इस देश के नाम की निरुक्ति प्रस्तुत की है :

> कःप्रजापतिरुपदिष्टः कश्यपश्च प्रजापति।
> तेजासौ निर्मितो देशः कश्मीराख्यो भविष्यति ॥२९१॥
>
> कंवारि हरिणा यस्माद्देशादस्मादपाकृतम्।
> कश्मीराख्यस्ततो पश्य नाम लोके भविष्यति ॥२९२॥[1]

यदि हम द्वितीय श्लोक की प्रथम पंक्ति के 'यस्माद्' पाठ को "अश्मनः" स्पष्ट मान लें, (क्योंकि शारदालिपि में इस प्रकार की भ्रान्ति का होना सर्वथा संभव है) तो "कं" जलवाची, अश्मनः-पर्वतीय दुर्गम पत्थरों से 'ईर'[2] निकाल के अथवा बहा कर (क+अश्म+ईर) अर्थात् "जल को पत्थरों से बहा के" अर्थ होता है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार, नीलमुनि के आधार पर कश्मीर का भौगोलिक स्पष्टीकरण अधिक वैज्ञानिक हो जाता है। किन्तु इस तर्क से

[1] नीलमत पुराण।

[2] सिद्धान्त कौमुदी—तिङते अदादयः।
यास्कः—इरिता इव ईरयिर इव अतः "क+अश्म+ईर" = कश्मीर।

इस बात को पुष्टि मिलती है कि "खादिनयार"[1] का नामकरण क्यों हुआ? श्री स्टेन ने 'राजतरंगिणी' के फुट-नोट में स्वयं यह स्वीकार किया है कि उन्हें 'खादिनयार' के स्थानीय नामकरण के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ। पर स्टेन साहब को इस बात का ज्ञान नहीं था कि कश्मीरी भाषा का आदि-स्त्रोत वैदिक भाषा भी रही है। अतः उनके दृष्टिकोण में भ्रान्ति का होना स्वाभाविक है।

कश्मीर के इतिहास की प्राचीनता और चिरन्तनता का आधुनिकतम परिचय भूर्ज-होम के भू-खनन से मिलता है जो तत्कालीन इतिहास की स्पष्ट समृद्धि है। "भूर्ज-होम" श्रीनगर की पूर्वोत्तर दिशा में सात-आठ मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ से प्राप्त सामग्री कश्मीर के प्राक् इतिहास के उषा-काल पर महान् प्रकाश डालती है। यह सभ्यता वास्तव में समृद्ध आर्य-सभ्यता ही है। प्रस्तर पर अंकित सूर्य, उसके समक्ष मृग का चित्र और उसी के निकट धनुष। वास्तव में सूर्य, मृगशिरा नक्षत्र और धनुराशि के द्योतक हैं। यथार्थ में यह प्रतीक पौष मास की सौर संक्रान्ति का है। अभी निर्णयात्मक परीक्षण कार्य नहीं हुआ है फिर भी प्राप्त लेखा-जोखा अनुमानतः इसे सिन्धु घाटी की सभ्यता से भी प्राचीन स्थापित करता है। भले ही कश्मीर के कुछ तथा-कथित लेखक संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ बन कर, मनमानी खींचातानी करके, कश्मीर की उत्पत्ति को (का = समान,

१ कल्हण की 'राजतरंगिणी' में इस स्थान का नाम "खादना" है जो अपने मूल वैदिक शब्द "खादो अर्णाः का किंचत् विकृत रूप है। यह 'निघण्टु' में नदीवाचक है और आश्चर्य इस बात का है कि यहीं पर नदी दुर्गम पर्वत से निकल कर स्रोत के रूप में प्रवाहित हुई है। कश्मीर का भू-सीमान्त 'खादनयार' ही समझा जाता है क्योंकि यहाँ से भाषा भी बदलती है। यह शब्द उस युग के इतिहास को सचेत करता है जब कश्यप मुनि के अलौकिक प्रभाव से पर्वत विस्फोट हुआ तथा सतीसर के पानी ने प्रथम बार निष्क्रमण (निकास) का रूप धारण किया। फलस्वरूप इसका 'खादो अर्णाः' नाम पड़ा जो अपभ्रंश भाषा के प्रभावस्वरूप "खादन" अवशेष रहा है। पश्चात् कश्मीर नरेश मेघवाहन की पत्नी 'इन्द्रावती' ने बुद्ध धर्म के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए, इसी स्थान पर एक भव्य विहार बनवाया जिससे इस स्थान का नाम 'खादन-विहार' हुआ। पर पुनः अपभ्रंश भाषा के कारण इस स्थान का नाम 'खादनयार' पड़ा। कश्मीर में बौद्ध 'विहार' की विकृति "यार" में हुई है।—राजतरंगिणी, तृतीय तरंग, १४ श्लोक।

शीर=सीरिया) "सीरिया के समान" कहकर, यहाँ की अनादि सभ्यता एवं संस्कृति की कड़ी को (जो युगों की अनुगूंज से इस घाटी में गुंजार करती रही है) विच्छिन्न करने का व्यर्थ प्रयत्न करें पर, इस दिवाभ्रान्ति से किसी भी शिथिलता का आना सम्भव नहीं है। वस्तुतः यहाँ हमारा प्रतिपाद्य विषय इतिहास न होकर भाषा है। भारतीय विद्वत् वर्ग का ध्यान दो कारणों से इस भाषा के प्रति नहीं रहा—प्रथम, ग्रियर्सन द्वारा प्रतिपादित भ्रान्ति के कारण और द्वितीय कश्मीरी भाषा की अनभिज्ञता के कारण।

कश्मीर का आदि जनवास करेवों (उत्तुंग-भूमि) पर ही रहा है क्योंकि नीचे सतीसर फैला हुआ था। 'करेवा' फारसी शब्द है पर कश्मीरी में इसे "उडर" कहते हैं जो मूलतः संस्कृत शब्द "उडामर"[1] से निकला है। प्रयत्नलाघव से मध्य "आम" का लोप होने से उडर शेष रहा है।

यहाँ के आदिवासी नाग[2] यक्ष[3] और पिशाच[4] रहे हैं। परन्तु जल निष्क्रमण के अनन्तर ये जातियाँ समृद्ध आर्य-सभ्यता में ही गर्भित हुईं। अतः सभ्यता के विकास के मूल में घाटी की सभ्यता, आर्य सभ्यता ही रही है और भाषा भी उसी की रही है। इसका मुख्य कारण आर्य-भाषा की समृद्धता का ही रहा है। यह कहना संगत ही है कि इस आर्येतर भाषा ने कश्मीरी पर कुछ प्रभाव डाला हो पर मूल रूप में कश्मीरी का उद्भव आर्य भाषा ही है और विभिन्न प्राकृतों में यह अर्ध-मागधी के निकट आती है। अपभ्रंशों में यह स्पष्टतया स्वयंभू महाकवि कृत "पउमचरिउ" की जैन-

[1] पद्मचन्द्र-कोष।

[2] दे० गिलगत मैनुस्क्रप्ट—नलिनाक्ष द्वारा संपादित, पृष्ठ १-६। इसके अनुसार नागों में ही सर्वप्रथम बुद्ध के प्रति आस्था जागी और पश्चात् वे उनके धर्म में दीक्षित हुए। वास्तव में नागों का निकास कश्मीर से लेकर असम तक पूरी तरह छाया रहा।

[3] यक्ष—एक पुराण प्रसिद्ध जाति है। इनके उपलक्ष्य में कश्मीर में पौष अमावसी को एक उत्सव भी मनाया जाता है जिसे यछामावस कहते हैं। हिन्दू परिवारों में यह एक जाति का भी नाम है।

[4] पिशाच—यह भी एक जाति-विशेष है। पर इस समय इन्हें "शुप्य बातल" कहकर पुकारा जाता है। इन्हें गाँवों से बाहर रहना पड़ता है तथा इनकी संख्या अत्यन्त नगण्य है। इस जाति की भाषा पंजाबी-कश्मीरी के बीच ठहरती है।

रामायण के सान्निध्य में आती है। स्वयंभू का काल-निर्णय सिन्धी जैन ग्रंथ माला संख्या ३४ के अनुसार[१] ई० ६७७-६७८ के आस-पास ठहरता है। तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर आधुनिक कश्मीरी भाषा की क्रियाएँ एवं शब्द-समूह अपभ्रंश भाषा की क्रियाओं एवं शब्द-समूह से इतनी समानता रखते हैं कि अनायास यह भ्रम हो उठता है कि कश्मीरी भाषा पढ़ रहे हैं या स्वयंभू का 'पउम-चरिउ'[२]। उदाहरण के रूप में :

	पउमचरिउ	कश्मीरी	संस्कृत
१	अप्पणय	पाणय	आत्मन्
२	आलव	आलव	आ+लव्
३	आढप्पइ	दप्पई	आरभ्यते
४	आव	आव	आगतः
५	उग्गम	वुग्ग	उद्+गम
६	उब्भ	व~~क~~ओभ वओम	ऊर्ध्व
७	उल्लूक	वलुख	अज्ञात
८	कड्ढ	कड्ढ	संभवतः कृष्ट से
९	कस	कश	कशा
१०	चप्प	चप्पफ्	अज्ञात

१ जिन विजय मुनि द्वारा संपादित 'पउमचरिउ' की भूमिका, पृष्ठ ७।
२ पउमचरिउ

इनडेक्स वरवरम्	पृष्ठ	३
... .	...	६
... .	....	६
... ...	....	७
....	...	९
....	...	९
... .	....	१०
....	...	१२
....	....	१४
... ...	...	२०
... ...	....	७
... .	....	१३

क्रियाएँ

संस्कृत	पउमचरिउ	कश्मीरी
"आव"	आव	आव
	आय	आय
	आइय	आइय
"कर"	करि	करि
	करउ	करउ
	किज्जइ	करिज्जइ
"स्था"	थाउ	थव
	थाहि	थविहे
"बोल्ल"	बोल्लिज्जइ	बूलिज्जइ

इस समय कश्मीरी भाषा का क्षेत्र समस्त कश्मीर-घाटी है, जिसमें उसके कामराज, मराज और यमराज क्षेत्र सम्मिलित हैं। (कश्मीर के पश्चिमोत्तर क्षेत्र को कामराज, दक्षिण पूर्व को मराज और श्रीनगर घाटी को यमराज कहते हैं)। इन तीनों क्षेत्रों के पारस्परिक उच्चारण में ध्वनि-भेद है। दक्षिण पूर्व के क्षेत्र में वैदिक स्वरित प्रक्रिया का आभास अब भी स्पष्ट मिलता है, यथा—"कअरिण" "वअनिन"। 'कामराज' आदि में अति दीर्घ स्वरों का प्रयोग है तथा शब्दों में तत्समता स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त जम्मू प्रान्त में प्रथमतः बानिहाल घाटी, भद्रवाह, कष्टवार और ढोडा भू भाग हैं। भद्रवाह और कष्टवार की भाषा में संस्कृत भाषा की प्राचीनता विद्यमान है। यथा :

कष्टवार—"सु गच्छत" संस्कृत—सः गच्छति।
"भ अहं गच्छाम" भो अहं गच्छामि।

काल-विभाजन की दृष्टि से कश्मीरी भाषा को हम मुख्यतया चार भागों में विभाजित कर सकते हैं :

१ वैदिक-काल ३ प्राकृत-अपभ्रंश काल
२ संस्कृत-काल ४ फारसी-प्रभाव काल

वैदिक कालीन शब्दावली और क्रियाओं की जटिलता अद्यावधि इस भाषा के स्वरूप में लक्षित होती है। इस भाषा के ऐसे प्रयोग हिन्दू-मुसल-

मान समान रूप से करते हैं। वस्तुतः ग्रियर्सन ने अज्ञान वश इन शब्दों को अनार्य प्रयोग घोषित किया है। इन शब्दों की एक बृहत् सूची बन सकती है जिनमें कहीं तत्समता विद्यमान है तो कहीं पर अर्द्ध-तत्समता। उदाहरण के रूप में हम यहाँ कुछ शब्दों को प्रस्तुत करते हैं :

क—कश्मीर-आगुर, वैदिक-अग्रुव, यास्क निरुक्त नदी नामानि, हिन्दी-स्रोत।

ख—क०-जमजम्, वै०-जमत "या० नि० ज्वलतो नामधेयानि," हिन्दी-लपट।

ग—क०-सस, "वै० ससम्" "या नि० अन्न नामानि" हि०-अनाज क० में रस भी इससे जुड़ा है-"ससरस"।

घ—क०-स्युन, वै०-सिनम् "या० नि० सिनमन्नंभवति", हि०-शाक भाजी या साग।

ङ—क०-स्वअ्च वै०-स्वच्चा "या नि० गत्यर्थस्य "उपपधेत" हि०-धीमी चाल।

च—क०-अच्छा, वै०-अच्छ "या० नि० अछ इत्येषशब्दों अग्रे अर्थे भवति," हिन्दी का 'अच्छा' ठीक या सुप्रयोग के लिए है पर कश्मीरी में वैदिक मतानुसार ही है। हिन्दी में इसका अर्थ 'आगे क्या हुआ' हो सकता है।"

छ—क-इअुथ०, वै० एति "या० नि० महत" हि०-आकर।

ज—क०-ब्रधान, वै०-ब्राधान "या० नि० महत" हि०-ललचाना।

झ—क०-चअेमव, वै०-चम्वो "सायणभाष्य-"पातु" हि०-पीना।

ट—क०-लुधुर, वै०-लोध "या० नि० लुब्ध" हिन्दी-लोभ।

ठ—क० वअरुण, वै०-ऊर्ण "सा० भा० अर्णेत" हि०-लिहाफ।

ड—क०-वाश, वै०-वाश "या नि० वाक्नामानि" हि०-स्पष्टीकरण।

ढ—क०-कअ्छुल, वै०-कुत्साय "या० नि० कृषि कर्मणि सफलानिकर्तुम" हि०-अनाज भारवाहक।

ण—क०-प्यपराय, वै०-पीपरन "या० नि० याचमानः हि० अभ्यर्थना।

त—क०-वशुलुन, वै-रूशती "या० नि० ज्वलित रूपां श्रियं रुशत इति एतत् वर्णनाम" हि०-मुँह की लाली।

थ—क०-कतन नह, वै०-कतमांचनाह सं-कदापि न, हि०-कभी भी नहीं।

द—क०–वाव, वै०–वावशान "या० नि० कामयमाना" हि०–अभाव या दरिद्रता, वै०–'शान' का कश्मीरी में लोप।

उपर्युक्त शब्दों एवं वाक्यांशों से हमारा तात्पर्य यह है कि वैदिक युगीय भाषा का प्रचलन एवं प्रसार कश्मीर में था और आगे चलकर यह स्थान संस्कृत एवं प्राकृतादि ने लिया। वैदिक पंचायती राज्य की अक्षुण्ण परंपरा कश्मीर में रही है क्योंकि कश्मीरी भाषा का "खण्ड-पअंच" संस्कृत "खण्ड-पंच"[1] से उपजा है अर्थात् पंचों में फूट डालने वाला। वाक्य में :

क०—भअ छूस न इछान एह् खण्ड पअंच राज्य।
सं०—भोअहं तु न इच्छामि इदं खण्डपंच राज्यम्।

फूट या लड़ाई के समय भी कश्मीर में पंचों का परामश महत्त्वपूर्ण होता था। यथा :

क०—पांचन् जन्यन् पृछव।
सं०—पंचजनान् पृच्छामः।

अनादि लोकगीतों की कड़ी में भी इसका उल्लेख मिलता है :

क०—"पांचन थीय चिय अथवास करुथस"।
सं०—पंचसंस्थितौ त्वया हस्तवासं कृतम्।
हि०—पांचों के सामने तुमने हस्त-गृहण किया।

कश्मीरी भाषा के कुछ शब्द प्राक् ऐतिहासिक काल पर भी प्रकाश डालते हैं, यथा—**"पल्लव"** विशेष या सामान्य कपड़े के लिए बहुप्रचलित शब्द है। यह शब्द उस युग की थाती को दुहराता है जब मनुष्य केवल पत्तों से अपने शरीर को ढाँपता था। यहाँ कुछ कवियों ने इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है और कल्हण की 'राजतरंगिणी' में इन शब्दों को देखकर भारतीय पण्डितों को भ्रान्ति भी हुई है। इन में से कुछ शब्द यौगिक हैं जो आर्यों के यहाँ आने के उपरान्त जलवायु के कारण या परिस्थितिवश काम में आए। यथा :

क०—**तुलकतुर**, सं०—**"तरलकातर"** कश्मीर के अन्तर्गत शिशिर ऋतु में पानी जम कर शीशे के समान कठिन हो जाता है। अतः जो तरल

[1] हिन्दी में जिसे खडपंच कहते हैं—सम्पादक।

(लिक्विड) था वही कातर (सालिड) हुआ। शीत ऋतु में मकानों की छतों के अगली मुडेर पर पिघलते हिम के जम जाने से लटकती शीशे की छड़ियाँ (अइसकअलस) बन जाती है। इसे कश्मीरी में **"शिशिर-गअण्ट"** कहते हैं जो **"शिशिर-घण्टा"** का विकृत रूप है।

डल सरोवर में उगने वाली एक प्रकार की सब्जी जो पंक में लिप्त कमल का डंठल होती है तथा जो खाने में स्वादिष्ट भी होती है, उसे कश्मीरी भाषा में **"नधुर"** कहते हैं। वास्तव में जब आर्यों ने इसे धरा पर उगते नहीं देखा तो 'न' उपसर्ग से "नधरा" अर्थात् 'धरा का नहीं' ऐसा समझा। यह प्रवृत्ति आर्यों में स्वाभाविक रही है क्योंकि संस्कृत साहित्य में इस प्रकार के बहुत से शब्द उपलब्ध होते हैं, यथा—"वानर' 'किंनर" आदि। वा+नरः का "वा" वास्तव में प्रश्नचिह्न के रूप में है अर्थात् "क्या" यह भी मनुष्य है ? इसी प्रकार किं नरः "क्या यह भी मनुष्य है ?" इसी प्रकार कश्मीरी में असंख्य संस्कृत शब्दों का यौगिक निर्माण जलवायु एवं भौगोलिक परिस्थिति के कारण हुआ है।

किसी भी भाषा का विशिष्ट विकास उस भाषा की वाक्य-रचना से होता है जिस से भाषा अपने भाषित रूप को ग्रहण करती है। इस सिद्धान्त को दृष्टि-पथ में रखते हुए हम कश्मीरी भाषा के उस रूप को देखने का प्रयास तो करेंगे ही जिसे कि यहाँ के हिन्दू तथा मुसलमान नित्य प्रति बोल-चाल की स्वाभाविक भाषा के रूप में प्रयोग करते हैं परन्तु साथ ही साथ उसकी दरद-वाक्यों से तुलना भी करेंगे जिससे कि पाठक यह समझ सकें कि कश्मीरी भाषा का उद्गम-स्थल दरद भाषा है अथवा संस्कृत भाषा।

१—क० वाक्य—**सु ओस रात युत आमुत।**

सं० वाक्य—**सः आसीत् रात्रौ अत्र अमतिस्म** (आगतः)[1]

हि० वाक्य—**वह कल यहाँ आया था।**

२—क० वा०—**म्य**[2] **मोन नअ् तम्यसुन्ध**[3]।

[1] सिद्धान्तकौमुदी, अमगत्यादिषु—आमति, आम क०—आम।

[2] संस्कृत—मया, प्राकृत—मए (भास—स्वप्नवासवदत्ता) क०-म्या या मे।

[3] प्राकृत-प्रकाश—वररूचि, तस्य सम्बन्धी—तस्स सुन्ध क०—तस्ससुन्ध या तम्य सुन्द।

सं० वा०—मया मानिता न तस्य।

हि० वा०—मैं ने उसका नहीं माना।

३—क० वा०—पथ काल्य ओस न इह सपदान

सं० वा०—प्राक् काले आसीत् न एतद् सपद्येत।

हि० वा०—पुराने जमाने में यह नहीं होता था।

४—क० वा०—कूर[1] अस आंगनस मंझ[2] नचान[3]।

सं० वा०—कुमारी आसीत् आंगण मध्ये नृत्यतिस्म।

हि० वा०—कुमारी आंगन के बीच में नाचती थी।

५—क० वा०—कुल्या मंज अअ्स नाव ईरान[4]।

सं० वा०—कुल्य मध्ये आसीत् नावं ईरतिस्म।

हि० वा०—नदी में नाव बह रही थी।

६—क० वा०—बअर[5] कर बन्ध युथनअ्[6] चूर अचिय[7]।

सं० वा०—द्वारं कुरु: बद्धं यथा न चौर: अचति।

हि० वा०—द्वार को बन्द करो कहीं चोर न घुसे।

७—क० वा०—हथअज्ज[8] इह थव[9] अकिपास[10]।

सं० वा०—हे आर्य इदं स्थापय एकपार्श्वे।

हि० वा०—हे आर्य इसको एक पास रखो।

[1] सं०-कुमारी, क०-कूर दीर्घस्वर समेत मध्य-व्यंजन का लोप और 'उ' का ऊकार।

[2] सं०-मध्य प्रा०-मंज, क०-मंझ। (श्री हर्ष नागनन्द नाटक)

[3] स०-नृत्यति "नृत, गात्र विक्षेपे" प्रा०-णच्चान 'आन' इति भूतकाला देशः (प्राकृत-प्रकाशः—श्री वररुचि)

[4] "ईरगतौ कंपने च" ईर धातु गति और कंपन पर है। सिद्धान्त कौमुदी। ईरिता इब ईरयिर इव नाविक एव पुनः पुनः नावं पारगमनाय यास्त्मेवमीयसि-(यास्क निरुक्त)

[5] सं०-द्वार-वार-बार-बर, क०-बर।

[6] सं०-यथा न, प्रा० एथन ("मालतीमाधव") क०-'युथ न'।

[7] अचगतौ-अचति ("सिद्धान्त-कौमुदी")

[8] सं०-आर्य, प्रा० अज्ज (भास "स्वप्नवासवदत्ता") क० में अकार ऊष्म प्रयोग।

[9] सं०-स्थापय क० थव क० भा० में आद्य स का लोप होता है। यथा-स्फुट क०-फुट, स्फुरण क० फोरुण्।

[10] सं०-एकपार्श्वे, प्रा० एक्कपास्स-("श्री हर्ष मालती माधव"), क०-अकिपास।

श्री ग्रियर्सन की दरद भाषा का भू-भाग कश्मीर का पश्चिमी सीमान्त प्रदेश है। इसके पूर्वी सीमान्त में भलती भाषा-भाषी प्रदेश है। दारदीय भाषा की मेखला गुरेस से गिलगित तक है। कज्जलवन से इस भू-भाग का आरंभ होता है और यहीं शीणा भाषा की क्रीडा-स्थली भी है। गुरेस का आधा भू भाग जिसे राज्यधानी उप-घाटी कहते हैं, भारतीय सीमा-क्षेत्र में आता है तथा दरद का मुख्य भाषा-भाषी प्रदेश पाकिस्तान के तथाकथित आज़ाद कश्मीर के सीमाक्षेत्र में सम्मिलित हैं। इस में अस्टोर, भूंजी, हुन्जा-नगर और चित्राल आते हैं। यहाँ पर भाषा का उच्चारण भेद २५ किलो-मीटर के अन्तर पर मिलता है। गुरेस और मीनिमर्ग तक लोग कश्मीरी एवं दरद का युगपत् प्रयोग करते हैं। हम दरद भाषा के परिप्रेक्ष्य में यह देखने का प्रयास करेंगे कि क्या यह कश्मीरी भाषा के समान ही संस्कृत से निकट सम्बन्ध स्थापित करने में उतनी ही समर्थशील है। अतः हम उपर्युक्त कश्मीरी संस्कृत वाक्यों में से केवल प्रथम पाँच वाक्यों को दरद भाषा से तुलना करके देखेंगे :

१—दरद वाक्य—स वासान इन आलुल।
सं० वाक्य—सः रात्रौ असीत् अत्र अमतिस्म।
२—दरद वाक्य—म्ये न माना स्यस्युन्द।
सं० वाक्य—मया न मानिता तस्य।
३—दरद वाक्य—मुछीन वकतज नानासुल।
सं० वाक्य—प्राग्काले न एतद् संपद्येत।
४—दरद वाक्य—मुलाई आंगनिज नटदेलि।
सं० वाक्य—कुमारी प्रांगणमध्ये नृत्यतिस्म।
५—दरद वाक्य—वओय मंझ नाव फिरिहिन्य।
सं० वाक्य—कुल्यमध्ये आसीत् नावं ईरयतिस्म।

उपर्युक्त दरद-भाषा के वाक्यों का स्पष्ट अध्ययन करने के उपरान्त हम स्वतः इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि दरद, संस्कृत गोत्रजा होने के उप-रान्त भी कश्मीरी भाषा की संस्कृतमय चिरंतन थाती से होड़ नहीं ले सकती है। इस से हम ग्रियर्सन द्वारा उत्पादित इस भ्रान्ति को, कि कश्मीरी भाषा दरद गोत्रजा है अच्छी तरह समझ सकते हैं। अवश्य ही भाषा-सर्वेक्षण के पीछे अँग्रेजी कूटनीति का सफल पासा रहा जिसे फेंकना ग्रियर्सन भूले

नहीं। कश्मीर भारत का अविभाज्य भाग महाभारत काल से रहा है और रामायण काल की जीवित गाथा है कि गौतम की पत्नी अहल्या पति शाप के कारण **'गुलमर्ग'** **(गौरी-मार्ग)** की दक्षिणीय पर्वत उपत्यका **"अहल पत्थर"** **(अहल्या-प्रस्तर)** पर ही राम की प्रतीक्षा करती रही। बौद्ध काल के भारत में कश्मीर बौद्ध-सिद्धान्त और दर्शन का मुख्य केन्द्र रहा है। बौद्धों की थेरी गाथा के प्रवर्त्तक श्री नागसेन[1] कश्मीर के ही रहे हैं। श्री नगर में सिंह-बिहार[2] से षोडश-बिहार तक बौद्धों[3] के प्रवचन बिहार थे। हारी पर्वत के दक्षिण[4] की तरफ प्रवरसेन नगर में बौद्धों का मुख्य केन्द्र था **"बुद्धगिरा"**[5] में बौद्धों का भिक्षु-भिक्षुणी-आभ्रमण केन्द्र था।

इस संदर्भ में, मैं महामेधावी पाणिनि की कुछ धातुओं का उल्लेख—कर देने का लोभ संवरण नहीं कर सकता हूँ। मैं केवल उन धातुओं का ही उल्लेख करूँगा जो कश्मीरी भाषा के विशेष एवं सतत् प्रयोग में आता है :

संस्कृत धातु	कश्मीरी	हिन्दी
१—चड़ि-कोपे; चण्डते	चण्ड	चपेट
२—हिठि-अनादरयो; हिण्डते	हिडुन	मखौल करना या उडाना
२—चष-पाने; चचुष	चहुन	चूसना
४—पुष-वृद्धौ	पोशुन	बराबर वितरण करना
५—भेष-भये; भेषति	भिष	बिल्ली को भगाने के लिए विशेष भयसूचक शब्द

१ बौद्धों की थेरी गाथा का विवरण, उसका प्रभाव और नागसेन एवं बौद्धसेन की विद्वता का परिचय हमें क्षेमराज की "शिवसूत्रविमर्शिनी" के प्रारम्भ में ही प्राप्त होता है "अस्वीकृत अवरदर्शन स्थितयः नाग बौद्धादि।" वास्तव में शैवाचार्य वसुगुप्त को नागसेन की थेरी गाथा से कड़ी टक्कर लेनी पडी है। तभी तो शिव की आराधना के उपरान्त उसे शिव-सूत्रों की प्रज्ञा का साक्षात्कार मिला।

२ श्रीनगर में जो नवाकदल सव्य तट है वहाँ पर बौद्धों के महाविहार या सिंह-विहार के अवशेष खण्डहर है जो आरक्योलाजी के अधीन है।

३ षोडश-बिहार आधुनिक सुनवोर या स्वर्ण-बिहार अथवा बादमी-बाग के पास पड़ता है।

४ आधुनिक श्री दशगीर साहब के आस-पास।

५ आलीकदल में यह स्थान है। यहाँ इसके अवशेष अब भी इस बात की साक्षी देते हैं कि यहाँ पर कभी भव्य बौद्ध-विहार रहा होगा।

६—घुषिर-विशब्दने; घोषित घुश कान न देना (विगत शब्द)
७—तप-दाहे; तापयति तपन या ताप सेंकना — आग या धूप
८—वट-ग्रन्थे; वटति वटुन बटोरना

यहाँ हम कश्मीरी भाषा के कतिपय नियमों को लेकर पुनः इस बात को देखने का प्रयास करेंगे कि यहाँ की भाषा में ध्वनि-परिवर्त्तन और वर्ण-विपर्यय होने में क्या वही नियम लागू होते हैं जो भारतीय आर्य भाषाओं में प्रयुक्त हुए हैं, अथवा नहीं। भारतीय आर्य भाषाओं, विशेष कर पालि में "त्स"[१] और प्स शब्द 'छ' में परिणत होते हैं। पर कश्मीरी भाषा में 'क्ष'[२] 'छ' में परिणत होता है।

संस्कृत	कश्मीरी	संस्कृत	कश्मीरी
कुक्ष	कुअ्च्छ	तक्ष	तच्छ
वक्ष	वअच्छ	अक्ष	अच्छ
लक्ष	लअच्छ	मधुमक्षी	माच्छ
यक्ष	यअच्छ	मक्षिका	मअच्छ

प्राच्य में स्वर परिवर्त्तन :

अ का इ–उ–ऊ में

मध्यम–मझिम क०–मंझिम्।
मनुष्य–मुनिस क०–मुनस या मोनष (लोलाभ घाटी का प्रयोग)

पूर्वी अपभ्रंश में :

अवेज्ज–अविद्या क०–अपुज्ज 'व' 'प' में परिणत हुआ है (असत्य अर्थ में)

अर्धमागधी में 'ज्ञ' का 'ज्ज' :

प्रतिज्ञा–पइज्ज क०–पउज्ज (असत्य के अर्थ में[३])

आदि 'प' का लोप एवं 'र' का लोप :

अर्धमागधी–पगास[४] क० गाश सं०–प्रकाश।

[१] हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास—श्री उ० ना० तिवारी।
[२] प्राकृत प्रकाश, श्री—वररूचि।
[३] पउम चरिउ–स्वयंभूदेव।
[४] पउम चरिउ–"

कहीं-कहीं अन्त्याक्षर में व्यंजन-ध्वनि के लोप हो जाने पर-उपधा और अन्त्यक्षर का संकोच—

परकीया–पराई क०–परअ्य ।

य से पूर्व ध–झ में परिणत होता है यथा :

सं० बोधति–ब्रोझति–बोझान ।

कश्मीरी भाषा में "त, थ, द, ध" का अधिकतर "च, छ, ज, झ" में विपर्यय होता है त्वं–च्वं–आधुनिक क० में केवल "च" सं०–त्वं कुत्र गच्छसि, कं०–"च कुत गच्छक" ।

त्र बहुधा त में :

सं०–कुत्र क०–कुत :

आदि व्यंजन

कश्मीरी में आदि-व्यंजन-संरक्षण की प्रवृत्ति अन्य भरतीय आर्य भाषाओं के समान ही रही है :

संस्कृत	कश्मीरी	संस्कृत	कश्मीरी
पेशुल	पिशुल	सिन्दूर	स्यन्दर
भ्रम	भ्रम	खण्ड	खअ्ण्ड
घुट (चरण ग्रन्थि)	घुड	चिरम	चेर
कुक्षि	कुछ्य	बुध्य	बूझ
भ्रातृजाया	भयकाकन्य	मातृश्वसा	मास
	(काकिनी अमृत वाचक है यथा : "काकिन्यमृत जीवनी" –रुद्रयामल-तन्त्र)	श्वास-नाडि	शूषनओर

संस्कृत	कश्मीरी	संस्कृत	कश्मीरी
पुष्ट	पऊठ	रज्जु	रज़अ्
चरू	चोर (हि० चूल्हा)	हिमाज्ज	हअन्ज (डल सरोवर में रहने वाला एक विशेष शाक व्यवसायी समुदाय)

मध्य एवं अन्त्य व्यंजन लोप या आगम :

संस्कृत	कश्मीरी	लोप तथा आगम
कपाल	कअ्ल	मध्यलोप
कुमारी	कूर	,,
हनु	हुंगन्य	मध्य आगम
नासिका	नस	अन्त्य लोप
लंवग	रुंग	रलयोः साम्यं ('र' और 'ल' का साम्य)

कश्मीरी में 'शकार' 'हकार' में परिणत होता है :

संस्कृत	कश्मीरी	हिन्दी
शिक्षन्[1]	हिछुन	शिक्षन्
शाक	हाक	साग
शृंखला	हंकल	साँकल
शत	हथ	सौ
शल्ल[2]	हल्ल	जाना, हिलना
शकुन	हावुन	शकुन
शान	हान	तोहमत
शरत	हरुद	पतझड
शारिका	हअ्र	सारिका
श्वान	हून	कुत्ता

कभी-कभी इसका अपवाद भी मिलता है :

संस्कृत	कश्मीरी	हिन्दी
श्वेत	शीन	हिम
शिशर	शशुर	जाडा
शिशु	शुर	बच्चा

१ शिक्षन्–शकार हकार में परिणत होता है।

२ क०–हल्लय नो ढलय नो पण्यनिश चलयनो हि०–हिलूंगा नहीं टलूंगा नहीं अपने से भागूं नहीं।

कभी-कभी आदि 'श' का लोप भी हो जाता है :

सं०—श्वल[1] श्वल आशुगमने ।

क०—वल्य[2] वल्य

हि०—शीघ्र गमन के विषय में ।

अन्त्य-व्यंजन लोप

संस्कृत	कश्मीरी	हिन्दी
दुर्गसंचार	दोर	लम्बी गली
निपातन	नितुन	नीचे गिरना
अढक	अढ	आधा
स्फुरण	फोरुन	फडकना
स्थाली	थाल	थाली
स्फुटन	फअ्टुन	फाडना

संयुक्त-व्यंजन

प्राचीन भा० आ० भाषा में संयुक्त व्यंजन बहुत अधिक है । मध्ययुगीय भारतीय आर्य-भाषा के संयुक्त व्यंजनों से पूर्व व्यंजन, अन्त्य-व्यंजन में परिणत हो जाता है और पर व्यंजन का द्वित्त्व बन जाता है ।

संस्कृत	कश्मीरी	हिन्दी
सप्त	सथ	साथ
मुद्ग	मुंग	मूँग
उष्ट्रं	वूंठ[3]	ऊँट
चञ्चु	तोंत[4]	चोंच
दुग्ध	दुध	दूध
अष्ठ	अठ्	आठ

लिंग

कश्मीरी भाषा की लिंग-प्रक्रिया भारतीय भाषाओं के समान ही

१ पाणिनि, सिद्धान्त कोमुदी ।

२ इसका अत्यधिक प्रयोग मुसलमानों में है ।

3 (कश्मीरी में आरम्भ का 'उ' व में परिवर्तित हो जाता है, यथा—'उमावती'', क०–वमावती, ''उस्ताद'' क०–वस्ताद, ''उम्मेद'', क०–वमेद—सम्पादक

४ कश्मीरी में तवर्ग, चवर्ग में परिणत होता है ।

जटिल है। मुख्य रूप में स्त्री-लिंग और पुल्लिग है। लिंग-बोध, लिंग-प्रत्यय लगाने से होता है :

क०–भाय सं०–भार्या प्रत्यय के प्रयोग से :

पुंलिग	**स्त्रीलिंग**	
ख्वअज (ख्वाजा)	ख्वअजभाय	भार्या
मुंश (मुंशी)	मुनिशभाय	,,
मास्टर	मास्टरभाय	,,
गूर (गोरक्षक)	गूरिभाय	,,
यजमन (यजमान)	यजमनभाय	,,
तीलवओन्य (तेली)	तीलवअन्यभाय	,,
कान्दुर	कान्दुरभाय	,,

ई प्रत्यय :

पुंलिग	**स्त्रीलिंग**
निक (शिशु)	निची
लडक	कूरी (कुमारी)

अर प्रत्यय :

पुंल्लिग	**स्त्रीलिंग**
वअुछ	वअछर

इन्य प्रत्यय :

पुंलिग	**स्त्रीलिंग**
काव (काक)	कविन्य
खर (खरः)	खरिन्य
सअुह (सिंहः)	सीमिन्य
भर (द्वार)	भरिन्य

कश्मीरी व्यवसाय वाचक शब्दों का संस्कृत वाणिक या वाणिज्य एवं वाणिज्या से लिंग-बोध होता है :

पु० लि०	**स्त्री० लि०**
हाक वोल[1] (शाक वाणिज्य)	हाक वाज्यण्य (वाणिज्या)

[1] (कश्मीरी में 'आ' का उच्चारण 'ओ' या 'उओ' होता है। जैसे 'ए' का 'इए' और 'ओ' का 'ऊ' हो जाता है तथा शब्दान्त का दीर्घ, ह्रस्व हो जाता है—यथा : जम्मू–जम्म, छकरी–छकर —सम्पादक)

दुध वोल	दुधवाज्यण्य (वाणिज्या)
सब्ज़ी वोल	सब्ज़ी वाज्यन्य ,,

कभी कभी किंचित् अन्तर से लिंग-बोध होता है :

ज़न	जनः	ज़अन्य

वचन

कश्मीरी में तीन वचनों के स्थान पर दो का अधिक प्रयोग है। शेष निर्देशों के लिए संख्यावाचक-विशेषणों का प्रयोग होता है।

एक वचन : शुर छु धवान	सं० शिशु तु धावति
बहु वचन : शुरि छे धवान	सं० शिशुवः ते धावन्ति

नोट : कश्मीरी में तवर्ग, चवर्ग में परिवर्तित हो जाता है। कश्मीरी भाषा में बहुधा बहुवचन ब्रज-भाषा के समान बनते हैं :

एक वचन	**बहु वचन**
घुर (घोटक)	घुरिन (ब्रज-घोडन)
मनुष (मनुष्यः)	मनुषन
घर (गृहम्)	घरन
कूर (कुमारी)	कोरिन्,
मुसलमान	मुसलमानन
भट्ट	भट्टन

कारक और वचनों का प्रयोग :

कारक	**एक वचन**	**बहुवचन**	
कर्त्ता	रामन	वाह्रियाव्[1]	रामव
कर्म	रामस	,,	रामन्
करण	राम सन्धि[2] किन्य	,,	रामन हन्दि[2] किन्य
संप्रदान	रामसक्युत[3]	,,	रामन क्युत[3]
अपादान	रामस भ्युन[4]	,,	रामनभ्युन[4]

१ सं० बहवः—बहा—बहुवाव वारिहा, क०—वारिस्याव।

२_२ सं० सन्धिक्रियार्थे, क० सन्धिकिन्य अर्थात् "द्वारा'।

३_३ सं० क्रियायें, क० क्ययुत, कश्मीरी भाषा में क्युत का प्रयोग इह थवुनअ्म क्युत" इदं स्थापितम् क्रियार्थे (व्यंग्य या कुण्ठा के प्रचलन में)

४_४ सं०—भिन्नार्थे पंचमी कं० भ्युन।

कारक	एकवचन	बहु वचन
सम्बन्ध	रामसुन्द[1]	रामन[1] हुन्द
अधिकरण	रामस् प्यठ्[2]	रामन् प्यठ[2]
संबोधन	हे रामः	हयो रामव

क्रिया

अपभ्रंश में धातु-रूपों के सरलीकरण और एकीकरण की प्रवृत्ति बहुत आगे बढ़ गई। आत्मने पद-परस्मैपद का भेद मध्ययुगीय आर्य-भाषाओं के प्रारम्भ-काल से ही समाप्त होने लगा था और अपभ्रंश तक आते-आते वह लुप्त हो गया। धातुओं के रूप प्रायः स्वादिगण का अनुसरण करने लगे। अपभ्रंश में काल-रचना के संबन्ध में तिङ्त रूपों के स्थान पर कृदन्त रूपों का व्यवहार बहुत बढ़ गया। फलतः कश्मीरी भाषा पर भी इसका प्रभाव पड़ा।

सामान्य वर्तमान-काल

एक० व० अन्य पु० करान करति म० पु० करान, करउ उ० पु० करान।

विध्यर्थक :

एक० व० अन्य पु० करिज्जअ् म० पु० करिज्जहि—इ उ० पु० करिज्जउ। ब० व० अन्य पु० करिज्जह, म० पु० किरज्जह। उ० पु० करव।

सामान्य भविष्यत् काल

एक० व० अन्य पु० करि करेहर म० पु० करक्, करेसहि उ० पु० करेस करिसि। ब० व० अन्य पु० करण म० पु० करिव, करण उ० पु० करव, करेसुह करिसीह शीह।

शतृ-शानच प्रत्ययान्त कश्मीरी शब्द :

पु० लिं० इछान स्त्री० इच्छवन्य। पु० परान, स्त्री० लिं० परवन्य

१—१ सं० संबन्ध क० सुन्ध या रामस संबन्धी।

२—२ सं० पृष्ठ अधिकरण पृष्ठाधारे "कलाप" क० प्यठ।

पठन्ती पु० चलान स्त्री० चलवन्य । पु० गृज़ान (गर्जती) स्त्री० गृज़वन्य ।

शानच् :—पु० मानवुन (मन्यमानः) स्त्री० मानवन्य (मन्यमाणा) पु० लगवुन (लगवाण) स्त्री० लगवन्य (लगवाण) पु० युधकरवुन (युध्यमान) स्त्री० युव करवन्य (युध्यमाना)

भूत कालिक भेद

	कश्मीरी	संस्कृत
पूर्णभूत	गोमुत ओस	गतः गमिता, अस्ति
अपूर्ण भूत	गच्छान ओस	गच्छन्, आसीत्
सामान्य भूत	गव—	गतः, हि० गया
आसन्न भूत	गोमुत	गतः
संदिग्ध भूत	गोमुत आस्य	गतः आहोस्वीत्
हेतु	ह्यकुन न गछेत	अशक्नोत् गतुं

कश्मीरी भाषा की किंचित् सामग्री प्रस्तुत करने के उपरान्त हम यह सरलता पूर्वक कह सकते हैं कि जिस प्रकार संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश के युगों की थपकियों से अन्य भारतीय भाषाओं ने विकास के पथ पर अपने चरण बढ़ाए हैं वस्तुतः उसी प्रकार कश्मीरी भाषा को भी (बिना किसी विदेशी हस्तक्षेप के) अग्रसर होना पड़ा है। १४वीं शती में विदेशी आक्रमण-कारियों के पैर पूरी तरह यहाँ जम गए और स्वतः ही उनकी भाषा (जो पुश्तो एवं फारसी थी) का प्रभाव शनैः-शनैः इस भाषा पर पड़ने लगा। तत्सम-शब्दों के स्थान पर विदेशी शब्दों का कोष बढ़ने लगा। धर्म-विपर्यय के कारण उस युग का ध्यान इस ओर और भी अधिक गया। मुगल सम्राट् शाहजहाँ के समय तक कश्मीर में हुण्डियाँ आदि न्याय सम्बन्धी विवरण संस्कृत में लिखे जाते रहे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें क्षेमेन्द्र द्वितीय के 'लोक-प्रकाश' से मिलता है। इसमें विदेशी शब्दों से युक्त मिश्रित-संस्कृत का प्रयोग है। यहाँ क्षेमेन्द्र के इस प्रसिद्ध ग्रन्थ से कुछ पंक्तियाँ उदाहण स्वरूप प्रस्तुत की जाती हैं :

"हुंडिका" श्री बहिलाहोन्तरे ज्यहानवादके आगरान्तरे भूठ खुज्यां[1]

[1] 'ख्वाज' मुसलमानों के प्रति आदर वाचक शब्द।

अमुक पादः श्री कश्मीरान्तरे बला–मध्ये निवासमान[१] स्थित डां अमुके तथा अमुकेन सलामबन्दगी[२] करणेयम्। च सहेसलामते[३] कांखमानहार[४] स्थितम्[५]।

अन्त में, मैं विद्वानों का ध्यान पुनः इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि कश्मीरी भाषा मूलतः वैदिक तनुजा है। संस्कृत भाषा की सुरम्य मातृ-गोद में वह यौवन को प्राप्त हुई है। पश्चात् वह मातृगृह को, प्रौढ़ कन्या के समान, छोड़ते हुए अपनी बाल-स्मृति को प्राकृत–अपभ्रंशों के पति-गृह में भुलाकर नई गृहस्थी को बसाने के लिए संलग्न हुई है। यद्यपि नियति के क्रूर प्रहारों ने उसे बुरी तरह पछाड़ा है पर चिरन्तन परम्परा के उस प्रभाव को उसने भुलाया नहीं है। ईसा की ग्यारहवीं शती के महान् कवि बिल्हण ने अपने 'विक्रमांकदेवचरितम्' में अपनी मातृ-भू कश्मीर को श्रद्धांजलि भेंट करते हुए जो शब्द व्यक्त किये हैं, उनसे बहुत कुछ हमारे मत की पुष्टि होती है :

यत्र स्त्रीणां प्रकृति सुलभं जन्मभाषावदेव।
प्रत्यावासं बिलसति वचः संस्कृतं प्राकृतं च ॥[६]

(क्रमशः)

---

१ शब्द-विन्यास अशुद्ध, पर भाषा-विज्ञान की दृष्टि से विकास-शील लक्षण; आधुनिक क० बस्यथ–वासः स्थित।

२ अरबी–फारसी प्रयोग।

३ अरबी–फारसी प्रयोग।

५ क० कांकछा–कांक्षा

४ क्षेमेन्द्र कृत "लोक-प्रकाश", पृष्ठ ६१।

६ "कश्मीर देश की स्त्रियाँ स्वाभाविक गति-प्रवाह से संस्कृत और प्राकृत का संभाषण जन्म भाषा के समान करती है"

(बिल्हण–विक्रमांकदेवचरितम्, अन्तिम सर्ग)

क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन

नज़ीर 'अकबराबादी',
[पुण्यतिथि सं १८२७]

*

यारो सुनो यह दूध के लुटैय्या का बालपन,
और मधुपुरी नगर के बसैय्या का बालपन,
मोहन-सरूप निरत करैय्या का बालपन,
बन बन के ग्वाल गउएँ चरैया का बालपन,
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन।

मोहन मदन गोपाल हरीबंस मन हरन,
बलिहारी उनके नाम पै मेरा यह तन बदन,
गिरधारी नन्दलाल हरीनाथ गौरधन,
लाखों किए बनाव हजारों किए जतन। ऐसा था बाँसुरी के....

अब घुटनियों का उनके मैं चलना बयाँ करूँ
या मीठी बातें मुँह से निकलना बयाँ करूँ,
या बालकों की तरह से चलना बयाँ करूँ,
या गोदियों में उनका मचलना बयाँ करूँ। ऐसा था बाँसुरी के....

जब पाँव चलने लगे बिहारी नवल किशोर,
माखन उचक्के ठहरे, मलाई दही के चोर,
मुँह हाथ दूध से भरे कपड़े भी शराबोर,
डाला तमाम बिरज की गलियों में अपने शोर। ऐसा था बासुरी के....

थे घर जो ग्वालनों के घर से लगे जा बजा,
जिस घर को खाली देखा उसी घर में जा फिरा,

माखन मलाई दूध जो पाया सो खा लिया,
कुछ खाया, कुछ खराब किया कुछ गिरा दिया। ऐसा था बाँसुरी के····

गर चोरी करते आ गई ग्वालन कोई वहाँ,
और उसने आपकड़ लिया तो उससे बोले 'हाँ',
मैं तो तेरी दही की उड़ाता था मक्खियाँ,
खाता नहीं, मैं उसकी निकाले था चींटियाँ। ऐसा था बाँसुरी के···

सब मिल जसोदा पास वह कहती थीं आके पीर,
अब तो तुम्हारा कान्ह हुआ है बड़ा शरीर,
देता है हमको गालियाँ फिर फाड़ता है चीर,
छोड़े दही, न दूध, न मक्खन मही न खीर। ऐसा था बाँसुरी के····

माता कभी यह मुझको पकड़कर ले जाती हैं,
गाने में अपने साथ मुझे भी गँवाती हैं,
सब नाचती हैं, आप मुझे भी नचाती हैं,
खुद ही तुम्हारे पास यह फरियादी लाती हैं। ऐसा था बाँसुरी के···

माता कभी यह मेरी छगलियाँ छुपाती हैं,
जाता हूँ राह में तो मुझे छेड़ जाती हैं,
खुद ही मुझे रुठाती हैं खुद ही मनाती हैं,
मारो इन्हें यह मुझको बहुत सा सताती हैं। ऐसा था बाँसुरी के···

एक रोज मुँह में, कान्ह ने माखन छुपा लिया,
पूछा जसोदा ने तो वही मुँह बना दिया,
मुँह खोल तीन लोक का आलम दिखा दिया,
एक आन में दिखा दिया और फिर भुला दिया। ऐसा था बाँसुरी के····

सब मिल के यारो कृष्ण मुरारी की बोलो जय,
गोविन्द छैल कुञ्ज-बिहारी की बोलो जय,
नाथों के नाथ श्याम मुरारी की बोलो जय,
तुम भी 'नजीर' कृष्ण मुरारी की बोलो जय,
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन!

रतनलाल 'शान्त'
प्राध्यापक, हिन्दी–विभाग
अमरसिंह कालिज, श्रीनगर

अस्तित्ववाद का कुहासा और मानव-व्यक्तित्त्व

*

निस्संदेह अस्तित्त्ववाद वर्त्तमान शती के सचेतन मनुष्य को सबसे अधिक बेचैन करने वाली विचारधारा है। यह एक ऐसी विचारसरणि है जिससे अविज्ञ दिखाई पड़ने वाले व्यक्ति भी, अपने निजत्व के, अपनी स्वानुभूति और स्वाभिव्यक्ति के, किसी न किसी स्तर पर छुए जाते हैं और परेशान भी किए जाते हैं। हम इससे कतराने की कोशिश करें तो यह विचारधारा हमारे प्राईवेट क्षणों में जाने कहाँ से प्रक्षिप्त होती है और हमारे 'निजी' 'अनन्य' जीवन को भी एक प्रश्न चिह्न-बना देती है। हम इस विचारधारा को अपने गम्भीर जीवन में उतारने की कोशिश करें तो यह गंभीरता के साथ जीवन को नकारते हुए मृत्यु की सर्वोपस्थिति के आब्सेशन (ग्रस्तता) से हमारे शांत सहज जीवन में संत्रास भर देती है। जीवन की जिस व्याख्या के हम आदी हो गये हैं उस पर पुनर्विचार कराके अस्तित्त्ववाद हमारे एक नये ही व्यक्तित्त्व का निर्माण कराता है।

प्रश्न और स्पष्ट चिंतन दर्शन के दो पक्ष बताये जा सकते हैं। दार्शनिक पहले प्रश्न करता है और फिर अपने चिंतन की स्पष्टता से प्रश्न को हल करता है। हल या समाधान उसका उद्देश्य नहीं होता। तब वह दार्शनिक न रह कर शुद्ध वैज्ञानिक बन जायेगा। समाधान उसके चिंतन की प्रक्रिया के दौरान एक संयुक्त-क्रिया होती है। उसका मूल उश्द्देश्य मन को शरीर से जुदा करना होता है, मनुष्य को जगत् से अलग करना होता है क्योंकि तभी चिंतन, स्पष्ट चिंतन या कहें चिंतन का कैवल्य संभव हो सकेगा।

जिस मनुष्य के लिए चिंतन का यह कैवल्य संभव हुआ हो वही व्यक्तिगत, अपने निजी 'व्यक्तित्त्व' का स्वामी हो सकता है। यानि कि व्यक्तित्त्व केवल मानसिक आधार पर और जगत् से निरपेक्ष स्थिति में निर्मित होता है। ऐसे व्यक्तित्त्व के निर्माण में दार्शनिक क़दम-क़दम पर प्रश्न करता है और शुद्ध तर्क के आधार पर हर धारणा स्थापित कराता हुआ आगे बढ़ता है। लेकिन उसका उद्देश्य, फिर वही, प्रश्नों का उत्तर देना या दिलाना नहीं होता; बल्कि वह चाहता है कि प्रश्न व्यक्ति के मानस में इस तरह पैठ जायें कि उसका सारा व्यक्तित्त्व प्रश्नमय हो उठे। प्रश्न उसके लिए निजी और व्यक्तिगत हो उठें। व्यक्तित्त्व जितना प्रश्नमय होगा उतना ही वह स्पष्ट और सम्पूर्ण होगा।

सामान्य दर्शन की उपर्युक्त प्रक्रिया या विधि से अस्तित्त्ववादी विधि ज़रा भिन्न है यदि मनुष्य निरन्तर प्रश्नाकुल, प्रश्नाधारित और प्रश्न ही बना हुआ है तब एक ऐसे दर्शन का उपयोग ही क्या जो उन सवालों को जन्म दे जिनके समाधान की कोई संभावना ही नहीं? इसके अनुसार इन प्रश्नों के उत्तर इसलिये असंभव नहीं कि मानव ज्ञान अपूर्ण है बल्कि आदमी प्रश्न ही बना रहेगा—यह उसकी निजी इच्छा है। विषयगत जगत् भी प्रश्न है और ऐसा ही बना रहेगा। दोनों उससे अधिक हैं जो इनके बारे में कहा जा सके।[१] और दूसरे, ये प्रश्न सैद्धान्तिक नहीं। मनुष्य के अस्तित्त्व या जीवन की व्याख्या करके समझना सैद्धांतिक रीति से संभव नहीं। ये प्रश्न भी अस्तित्त्वपरक हैं। प्रश्न समझने-सुलझाने की यह विधि ही ऐसी है कि अस्तित्त्ववान व्यक्ति खुद प्रश्न बन के रह जाता है। इस दृष्टि से अस्तित्त्ववादी दर्शन या तो समूचे जीवन को ढाँप-ढक लेता है या अस्तित्त्व की प्रथम संभावना के ही समय मनुष्य को अस्तित्त्वचेतन प्रश्नों के बीच खड़ा करके प्रश्न ही बना देता है। इसलिए अस्तित्त्ववाद को समझने का प्रयास भी अस्तित्त्व-

१ The reason why there can be no objective, universal and certain answers to them is not merely the present inadequacy of our knowledge but because man is, and remains, in his being a question, a personal choice and the objective world is and remains in its being a question, open possibility, both are at any time other than and more than anything that can be said of them. Six Existentialist Thinkers : H. J. Blackman, p. 152.

वादी हो जाता है। यही वजह है कि वर्तमान शती का शुद्ध दर्शन होते हुए भी अस्तित्ववाद जीवन चिंतन और सृजन की हर विधा, हर क्षेत्र में अनायास ही प्रवेश पाता है। दार्शनिक, यह कह कर कि अस्तित्ववादी चिंतक, मनुष्य को प्रश्न बना देता है, वास्तव में चिंतन की सर्वव्यापकता बताते हुए यह भी संकेतित करना चाहते हैं कि अस्तित्व चिंतन से ही परे है। चिंतन या विचार से परे एक प्रकार की ट्रांसिडेंस संभव है जो अनुभव और निजी प्रयास की वस्तु है। तो क्या विचार और अनुभव का कोई आपसी सम्बन्ध नहीं? हाँ विचार अनुभव की व्याख्या कर सकता है।[१] शुद्ध विचार संभव ही नहीं होता। इस तरह अस्तित्ववाद शुद्ध और निरपेक्ष विचार से इनकार ही करता है। यह विचारधारा पूर्ववर्ती शुद्ध विचारवादी विचार की निरर्थकता के खिलाफ़ ही जनमी।[२] शुद्ध विचार प्रणाली से अस्तित्ववाद को समझने के प्रयास को यूरोप का मानचित्र लिए डेनमार्क में यात्रा करने के समान बताते हैं। यूरोप के नक्शे में डेनमार्क पेंसिल की नोक के तले समाता है।[3] शुद्ध विचार मग्न व्यक्ति खुद विचार से अलग बना रहता है और विचार को सैद्धान्तिक स्तर पर लेता है। दूसरे शब्दों में वह प्रश्न को या विचार को जीता नहीं, वह प्रश्नमय नहीं बन जाता। अस्तित्ववाद पूर्ववर्ती दर्शनों से इसीलिए भिन्न है क्योंकि वह दार्शनिक प्रणाली के भी मूल में जाकर मानव अस्तित्व की संभावना के प्रश्न के सामने हमको यूँ खड़ा करता है कि हम खुद अस्तित्व हुए जाते हैं। प्रश्न जीने की ज़िम्मेदारी का एहसास कराना अस्तित्ववाद का ध्येय है।

अनुभव, एहसास और प्रश्न—अस्तित्व (Being) के बारे में प्रश्न—यह अस्तित्ववाद की मूल समस्या है। अस्तित्ववादियों के सामने अस्तित्व और व्यक्तित्व पर्याय प्रायः हैं। अस्तित्व को समझता हुआ व्यक्ति व्यक्तित्व का स्वामी होता है और अस्तित्व को समझना अनुभव की बात है। अस्तित्ववाद, इस तरह, विचार वितर्क, बहस-विवाद की अपेक्षा अनुभव ऐकान्तिक-अनुभव की विचार प्रणाली है।

"For all their subjectivism, the Existentialists seen bo-

१ Since thought can not think existence, its buesiness is to initiate and interpret experience. Ibid, p. 154.

२ Ibid, p. 2.

3 Concluding unscientific postscript-Kierkegaard, p. 275

und down to the basis assumption that existence is the object of experience."[1]

अनुभव क्या करना होता है ? सामान्य दर्शन भी तो जीव-जगत् और व्यक्ति-ईश्वर के सम्बन्धों की व्याख्या करता है। अस्तित्ववाद इन सब के बीच में खड़े केन्द्रबिन्दु अस्तित्त्व की व्याख्या करता है इसलिए अनुभव इसी अस्तित्त्व का होना चाहिए। जैसे पहले कहा गया है कि अस्तित्त्ववाद मनुष्य के चितायमान मन को विषयगत जगत् से अलग स्थापित करना चाहता है, मन को शरीर से जुदा स्थित हुआ देखता है। इसलिए इसी विलगीकरण का अनुभव उसका ध्येय होना चाहिए। इस जगत् से विलग ज्ञान के द्वारा वह नहीं हो सकता, परिप्रेक्ष्य को समझ कर भी नहीं हो सकता बल्कि इसकी स्थूलता के 'असमाप्य अनुभव' के द्वारा ही हो सकता है। लेकिन दुनियाँ की स्थूलता का अनुभव दुनियाँ से निरन्तर एकीकरण के द्वारा नहीं हो सकता क्योंकि दुनियाँ के साथ एक होने का मतलब अपना अस्तित्त्व लोप करना और अपने लिए दुनियाँ का भी अस्तित्त्व लोप करना है। दुनियाँ का यथार्थ बना रहना चाहिए, बना रहता ही है। हमारा उद्देश्य इस यथार्थ के साथ निरन्तर टकराते हुए आदर्श को भी जीना नहीं होना चाहिए, बल्कि इस टक्कर, इस तनाव की अनुभूति ही हमारा ध्येय होना चाहिए। अस्तित्त्ववाद यहीं पर पूर्ववर्ती विचार-धाराओं जैसे भौतिकवाद, आदर्शवाद या धर्मशास्त्र से भी भिन्न हो जाता है। ये दर्शन यथार्थ और आदर्श को एक आदर्श (काल्पनिक) रूप में मिलाते हैं, उनका एकीकरण संभव बनाते हैं। आदमी और उसके जगत् का एक अलगाव भी वे एक आदर्श वातावरण में ख़तम करते हैं। जब अलगाव ही खतम हो गया तो तनाव न रहा और यहीं उसे जीने की, अनुभवकरने की नौबत आएगी। हमें भ्रम छोड़कर दुनियाँ में लगे रहना चाहिए। दुनियाँ में लगे रहने का तात्पर्य दुनियाँ की विसंगतियों, मृत्यु, पीड़ा संघर्ष, पाप आदि से खुलकर जूझना है। खुद को असम्पृक्त करना (दर्शक या संन्यासी की तरह) खुद को दुनियाँ से ऊपर उठाना नहीं है बल्कि अपना निजत्त्व पाने, 'खुद' बनने की असफलता है। 'जो दर्शन मनुष्य की आँखें खोलता है और उसे मायूसी और उदासी के सामने अनावृत्त कर डालता है, उसे आस्था भी देता है कि वह जीता रहता जाय।'[2] अस्तित्त्ववादी चिंतकों

१ Existentiualism and Indian thought K. Guru Datt, p. 75.
२ कार्ल यास्पर्स Six Existentialist Thinkers, p. 56.

का अनुभव दर्शनानुभव है। यह "अन्य" की दुनियाँ का अनुभव है जिसके साथ व्यक्ति का एकीकरण नहीं हो सकता। इसी दुनियाँ के साथ सम्पर्क मात्र ज्याँ पॉल सार्त्र (१६०५—) को विकर्षित करता है और उसे उबकाई आती है।[1] उबकाई ही नहीं, और भी कई कड़ुए अनुभवों से गुज़रना पड़ता है। पीड़ा (anguish) अकेलापन, मायूसी और मृत्यु की सदा-उपस्थिति हमारे अनुभव के सोपान बनते हैं। सार्त्र कहते हैं—"Man is anguish"। फ्रेडरिख़ नीत्शे (१८४४-१६००) अजीब से अनाविष्कृत निषिद्ध नरकों, ग्लैशियरों और पर्वतशृंगों से आकृष्ट होते थे। व्यक्ति नरक के निचले पर्वतों को खुद एक ऊँची चोटी पर खड़े-खड़े देख सकता है और साथ ही उसमें कूद पड़ने की संभावना से इनकार भी कर सकता है क्योंकि कूद पड़ना अनुभव की ही हत्या है। अनुभव की सुरक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है और यही अस्तित्ववादी दर्शन का निचोड़ है। खुद शून्य बनने या बनने की इच्छा रखने से शून्यवाद को जीता नहीं जा सकता।

जब अस्तित्ववाद शून्य, निराशा, मृत्यु और पीडा की बात करता है तो हज़ारों उंगलियाँ उठती हैं। जीवन की प्रगति का हवाला दिया जाता है, मनुष्य की उन्नति और वृद्धि के इतिहास में उसकी उन्मुखता की बात की जाती है और खुले तौर पर इस वाद को प्रतिमानव और मानवमूल्य विरोधी क़रार दिया जाता है। लेकिन अस्तित्ववाद मानवमूल्यों की सुरक्षा का ही दर्शन है। निस्संन्देह यह उन मूल्यों की बात नहीं करता जो सतही हैं, अस्थिर हैं या सामयिक हैं। आज के युग में इसकी उपादेयता बढ़ ही रही है। कीर्केगार्द के युग में धर्म (ईसाई धर्म) की नई व्याख्या के संदर्भ में मानव व्यक्तित्व की स्थिति को समझने की ज़रूरत थी तो आज के वैज्ञानिक बुद्धिवाद या निरपेक्ष आदर्शवाद के युग में सार्त्र को मानव व्यक्तित्व को स्थापित करने की आवश्यकता महसूस हुई। सार्त्र इसलिये दो विश्वयुद्धों के सदमे से दुनियाँ का ऐसा रूप चित्रित करते हैं जो उबकाई लाने वाला हो। वे इस दुनियाँ की आत्यन्तिक (extreme) स्थितियों से गले मिलने को कहते हैं। उनकी दृष्टि से अस्तित्ववादी अभिवृत्ति (attitude) —"attaching yourself to nothing and being faithful to nothing

[1] La Nausee, p. 25.

ness and joyously embracing death or absurdity.[१]" के द्वारा प्रकट किया जाना चाहिए। इसी तरह एक और जर्मन अस्तित्ववादी चिंतक मार्टिन बूबर (१८७५—) दुनियाँ को नई दृष्टि से देखकर नये अनुभव प्राप्त करने पर ज़ोर देते है : The world which appears to you in this way is unreliable for it takes on continually new appearence, you can not hold it to its word. It has no destiny, for every thing in it penetrates everything else; no duration, for it comes even when it is not summoned and vanishes even when it is tightly held.[२] जगत् की यह व्याख्या सार्त्र से बहुत मिलती है। जगत् की अस्थिरता कोई भौतिक तथ्य न भी हो पर यह अवश्य एक भौतिक तथ्य है। दार्शनिक चिंतन में इसका सामना करने से ही व्यक्ति कई दूसरे महत्त्वपूर्ण तथ्यों को टोहता है। मृत्यु एक ऐसा ही तथ्य है जिसे अपनी नियति मानकर हमें अपनाना चाहिए। मृत्यु केवल जीवन की समाप्ति का ही नाम नहीं (कम से कम अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने इसे इस रूप में ही नहीं माना) बल्कि मृत्यु मनुष्य की हर क्रिया में मौजूद रहती है—पृष्ठ-भूमि के रूप में, तल में, सतह पर, स्थूल या सूक्ष्म रूप में। मार्टिन हीडेगर (१८८६—) के शब्दों में—'यह मेरे जीवन के अंत में नहीं आती, यह मेरे जीवन के हर कार्य में, जीने की ही क्रिया में मौजूद रहती है।' लेकिन मृत्यु की इस सर्व व्यापकता को एक भारतीय दार्शनिक प्रो० रा० ना० कौल दूसरे ढंग से समझाते हैं—"मृत्यु से केवल सतही अनुभाविक (empirical) अस्तित्त्व को भय रहता है—अनुभवातीत (transcedental) अस्तित्त्व को नहीं।"[3] अस्तित्त्ववादी अवश्य अनुभावातीतवाद की बात करते हैं लेकिन कौल महोदय का तात्पर्य यहाँ पर अस्तित्त्व के दर्शन को भारतीय उपनिषद् दर्शन के समकक्ष बतलाना है। वे विशेषकर कठोपषिद् में मृत्यु की समस्या को इस संदर्भ में उद्धृत करते हैं। उनकी दृष्टि में जबकि उपनिषद् में मृत्यु को 'जीवन का अंतरतम रहस्य' बताया गया है आधुनिक दार्शनिक इसे दूसरे ही ढंग से, जिसमें सहानुभूति की कमी और तर्क एवं विश्लेषण की ज़्यादती हो, व्याख्यायित करते हैं। शिव जीवन में मृत्यु की सद्य—उपस्थिति के प्रतीक हैं। उन्हें भय और संत्रास के

१ On being and Nothingness—J. P. Sartre.
२ I and Thou–Martin Buber.
3 Immediacy, Reason and Existence—R. N. Kaul, p. 235.

कारण पूजा नहीं जाता बल्कि उनके आशुतोष स्वभाव, परम प्रसन्न प्रकृति के कारण ही जीवन में स्थान दिया जाता है। प्रो० कौल को शिकायत है कि आज के दार्शनिक मृत्यु और आत्म-हत्या के अनुभवों की बढ़-चढ़ कर बातें बनाते हैं लेकिन शायद ही कोई अपने दैनिक जीवन में इस सत्य का क्रियात्मक प्रयोग करता हो।[१] लेकिन कौल महोदय का ऐसा कथन न्याय्य नहीं है। फ्रांस में अस्तित्ववाद एक क्रियात्मक दर्शन बन गया है।[२] फ्रांस के लोग अधिक ग्रहणशील, चिंतक, स्वभावतः कलाकार और दार्शनिक हैं इसलिए वे इस दर्शन को दैनिक जीवन में सचेत होकर अपनाए हुए हैं। आज की संघर्ष और युद्धबिद्ध दुनियाँ में कितने सारे राष्ट्रों की जनता मृत्यु और त्रास की निरन्तर संभावना के वातावरण में जी रही है और मृत्यु को एक अनिवार्य तथ्य मानकर उससे जीवन को असामान्य बनाने से रोके हुए हैं। नीत्शे का कहना था कि 'मैंने अपनी कृतियाँ सदा अपने शरीर और जीवन से लिखी हैं; मैं नहीं जानता-बुद्धिवादी समस्याएँ क्या होती हैं।[3] इसी प्रकार गैब्रियल मार्सेल (१८८६—) की उक्ति है : 'मनुष्य का सार स्थिति के मध्य में होना है' (The essence of men is to be in a situation)[४] मृत्यु इस तरह इन विचारकों को उन घटनाओं में दिखाई देती है जो सामान्य दृष्टि से अरोचक और कडुवी लगती हैं। अपने को 'मैं हूँ' प्रश्न के कठघरे में खड़ा करके उसके जागतिक संबंधों का विश्लेषण अपने आप को भी प्रश्नमय बनाने से हो सकता है; जिसका उल्लेख इस निबंध के आरंभ में हुआ है।

भारतीय दृष्टि से मृत्यु का वरण एक महत्त्वपूर्ण घटना है। अस्तित्ववादी वरण की स्वतन्त्रता मानव की नियति बताते हैं। मनुष्य वरण का

१ Ibid, p. 236.

२ ...existentialism has become a practical philosophy for the first time in France; not so much in the sense that groups of individuals in France try to live by its light; though that is said to be the case; but because the French are an artistic people able to provide material in fictional from.

—Existentialism & Humanism : J. P. Sartre
Introduction : Philip Mairet, p. 17.

3 Reality, Man and Existence : H. J. Blackman (Bantam), p. 54.

४ Six Existentialist Thinkers, p. 68.

स्वातन्त्र्य लिए हुए जीता है इसलिए मृत्यु का भी वरने में स्वतन्त्र होना चाहिए। सार्त्र के शब्दों में मनुष्य 'condemned to be free' है और भारतीय दृष्टि में 'अहम्' का विघटन महत् की प्राप्ति या कहें कि अस्तित्त्व की पूर्णता का द्योतक है (अनजाने में ही महादेवी वर्मा ने 'मृत्यु जीवन का चरम विकास' लिखकर इस तथ्य का समर्थन किया है। वे यद्यपि भारतीय वेदान्त से प्रभावित होने की घोषणा करती हैं लेकिन उनके प्रेरक प्रभाव स्वाधीनता-पूर्व भारतीय राष्ट्रीय चिंतन की अवनतिशील प्रवृत्तियाँ थीं।) कौल महोदय ने महर्षि रामन के अस्त्तित्व संबंधी दर्शन का उल्लेख किया है। जब "मैं" की प्रकृति को निरंतर प्रश्नों से विश्लेषित किया जाता है तो 'अर्ध-अहम्' मिटता है और वास्तविक 'अहम्' जागृत होता है।[१] भले ही 'अहम्' की यह संन्यासी-सुलभ व्याख्या हो पर, भारतीय दृष्टि से यह 'अहम्' वास्तविक व्यक्तित्त्व का निर्माता और मिथ्या व्यक्तित्त्व का दमन करने वाला होता है। वास्तविक व्यक्तित्त्व सात्त्विक स्वभाव के अवयवों से बनता है।

मनुष्य को ऊपर से निराशापरक और उदास अस्तित्त्ववाद से काफी सहानुभूति मिली। इसने उसकी निराधार स्थिति को समझा। मनुष्य आधार रहित कब हुआ? उस का कौन सहारा था जो उससे छूट गया? क्यों उस की आस्था मिट गई? आत्मविश्वास, उदात्तता, उन्नति और प्रगति जैसे शब्द क्यों झूठे पड़ गये? यदि ऐसी शून्य की स्थिति है तो क्या मनुष्य इससे लाभान्वित हुआ अथवा उसे हानि उठानी पड़ी? इन प्रश्नों का उत्तर अस्तित्त्ववाद की ऐतिहासिक आवश्यकता की व्याख्या कर सकता है।

In fact, we philsophers and "free spirits" feel ourselves irradiated as by new dawn by the report that the "old God is dead"; our hearts overflow with gratitude, astonishment, presentiment and expectations. —We Fearless Ones

from The Joyful Wisdom—Nietzche

नीत्शे ने अपने युग की इस चेतना को पहचाना कि ईसाई ईश्वर आस्था रखने के योग्य नहीं रह गया है। उसे लगा कि यूरोप पर कोई सूर्य अभी तक चमक रहा था कि अचानक अस्त हो गया जो अभी तक विश्वसनीय था वह संदिग्ध हो गया है। यह नीत्शे को ही लगा। वे ही इस को

१ Immediacy, Reason and Existence, p. 245.

अनुभव कर सके। यद्यपि वे मानते हैं कि उनके अतिरिक्त बहुत से लोग इस घटना को जान गये हैं लेकिन अभी तक इसको महत्त्वहीन ही समझते रहे हैं। ईश्वर मर गया तो नीत्शे अपने सामने एक अनिवर्चनीय स्थिति पाता है। सब आस्थाओं का जो केन्द्र था, कला, साहित्य, समाज, राजनीति का जो स्रोत था वही न रहा तो मानव क्या करे? क्या भटक जाय? क्या धुरीहीन होकर अनन्त में ठुकराया जाय? नहीं, नीत्शे का मानव इस स्थिति से खुश है क्योंकि अब आदमी अपने लिए खुद जिम्मेवार है।" आखिर क्षितिज खुल गया। भ ले ही यह स्पष्ट और उज्ज्वल न हो पर, हमारे जहाज़ हर खतरे के सम्मुख समुद्र में खोले जा सकते हैं। जो सामना करे उसके लिए हर ख़तरा वहन करने को अनुज्ञा होती है। समुद्र, 'हमारा' समुद्र फिर हमारे सामने खुला पड़ा है। आज से पहले ऐसा 'खुला समुद्र' कभी अस्तित्त्व नहीं रखता था—" (वही) मूलतः नीत्शे मानव की मूल प्रसार और विस्तरण की शक्ति में असीम आस्था रखते थे। वे वास्तव में निराशावाद और शून्यवाद से मानव को उबारना चाहते थे। उनकी अतिमानव की धारणा इसी प्रेरणा का परिणाम है।[१] अतिमानव मनुष्य की पूर्णता का प्रतीक है—यही नीत्शे का मंतव्य था। दूसरे अस्तित्ववादी भी ईश्वर का प्रसंग आने पर मनुष्य की एकांगिता और अभावों का जिक्र करते हैं। सार्त्र मानव-सत्य की मूल धारणा यही मानते हैं कि 'मनुष्य एक ऐसा जीव है जिसका प्रक्षेप ईश्वर होना है···· ईश्वर, अनुभावातीतत्त्व का परम उद्देश्य और मूल्य मनुष्य की सीमाएँ हैं जिनके द्वारा मनुष्य अपने आप पर वह प्रकट करता है जो वह है। मानव होने का मतलब ईश्वर होने की ओर वढ़ने का नाम है। या चाहें तो आप कह सकते हैं, मानव मूलतः ईश्वर होने की कामना है।'[२] ईश्वर धार्मिक आस्था का प्रश्न नहीं क्योंकि ईश्वर साक्षी और प्रमाण के बल पर प्रमाणित

१ First and formost, the supermen is not a very fine specimen of Men. He is a creature of dream—at present unimaginable, a new stage in evolution. Men is the darkc loud— Superman the ligthning therefrom- He shall be men's destruction and fulfilment. He shall be Men's destruction and fulfilment. He shall burn up.

—Miss M. M. Bozman in the Introduction to = Thus Spake Zarathustra.

२ Doing and Having-Being And Nothingness—J. P. Sartre.

नहीं किया जा सकता। ईश्वर मर गया हो तो पूरे परिणाम हमें भुगतने होंगे। नीत्शे इन परिणामों के सामने पहली बार उत्तरदायी मानव को पाकर फूले नहीं समाया था। ईश्वर को मानने न मानने से अधिक गंभीर प्रश्न, ईश्वर का होना या नहीं होना नहीं है। मनुष्य अपनी दुनियाँ के लिए ईश्वर को मान कर या न मानकर पूरा जिम्मेदार बन जाता है क्योंकि अपनी दुनिया वह खुद बनाता है, उसे वह खुद अर्थ देता है।[१]

अस्तित्ववादी मनुष्य की दुरावस्था पर सकरुण ऍप्रोच से सोचते है, क्योंकि मनुष्य को उसके जगत् से अलग करना एक आवश्यक माँग है जिसे वे पूरा करना चाहते हैं। अस्तित्ववादी चितंन की अनुपस्थिति में मनुष्य का जीना संदेहास्पद बन जाता है। "Existential Philosophers are concerned with the manoeuvre of existing individuals whose being is ambiguous, existence which is ambiguous."[२] इससे हम अस्तित्ववादी दर्शन की प्रकृति पर सोचने की स्थिति में आ गये हैं।

Being और विचार में विच्छिन्नता लाना कीर्केगार्द की दृष्टि में अस्तित्व की समस्या है।[३] यह विच्छिन्नता ही मानव की वास्तविकता है। इसलिए अस्तित्व, एक अस्तित्ववान मानव की रुचि का विषय होना चाहिए। यह सत्य चूँकि अरूप है इसलिए इसे रूपवान भाषा में उतारा या बताया नहीं जा सकता। अस्तित्ववाद की परिभाषा रूपायित करते समय इसीलिए कई संघटक तत्त्वों की अलग-अलग स्तर पर व्याख्या आवश्यक हो जाती है। सार्त्र ने 'अस्तित्ववाद और मानवतावाद' पुस्तकों में इन तत्त्वों पर समुचित प्रकाश डाला है। इस से स्पष्ट होता है कि समकालीन मानव-व्यक्तित्व कोसर्वाधिक गंभीर प्रयास से समझने का प्रयत्न अस्तित्ववाद ही करता है। Anguish या Angst या यातना मानव की पहली नियति है। जब मनुष्य किसी भी काम के लिए प्रतिबद्ध हो जाता है—वह उस क्षण संपूर्ण दाय के बोध से भाग नहीं सकता। कई लोगों का मंतव्य है कि वे ऐसे किसी भी प्रतिबद्धता के क्षण का अनुभव नहीं करते और किसी भी दाय से आक्रांत नहीं होते। लेकिन यह कथन आत्मप्रवंचना भर है। सच तो यह है कि जो किसी भी उत्तरदायित्त्व को

१ Reality, Men and Existence, p. 5

२ Six Existentialist Thinkers, p. 153.

३ Concluding unscientific Past-script : An existential system is impossible.

निभाते हैं वे इस क्षण की यातना से अवश्य गुज़रते हैं । और उत्तरदायित्त्व हर कोई किसी न किसी रूप में बड़े या छोटे पैमाने पर वहन करता ही है । उसे महत्त्वपूर्ण या महत्त्व-हीन निर्णय लेना ही पड़ता है । मानव की दूसरी नियति है 'परित्याग'—abandonment यानि कि ईश्वर के विश्वास का परित्याग । फ्रांस में १८८० के करीब कई प्राध्यापकों ने एक धर्मनिरपेक्ष नैतिकता की शुरूआत की ओर संकेत किया । ऐसी नीतियों की स्थापना की आवश्यकता का अनुभव उन्हें हुआ जो धर्म और ईश्वर के बिना भी समाज को बाँधे रख सकें । उनका मत था कि ईश्वर एक मँहगा प्रमेय (hypothesis) है अत: इसके बिनाही रहना होगा । दुनियाँ को ठीक नियमित रखने के लिए कई नीतियों की आवश्यकता बनी रहती है वे हमें स्वीकारनी चाहियें । जैसे झूठ न बोलें, पत्नी को न पीटें, बच्चों को पालें इत्यादि । बात सही भी है । ईश्वर न रहे तो कुछ नहीं बदलेगा लेकिन एक अस्तित्त्ववादी विचारक की विडम्बना का यही कारण है । क्योंकि यदि ऐश्वर न रहे तो हर चीज़ हर कार्य अज्ञेय होगा । आदमी कुछ भी कर सकेगा हो सकेगा, और इस प्रकार 'अकेला' पड़ जायगा । सीमाएँ भीतियाँ (taboos) असिद्धियाँ (prohibitions) मनुष्य को घेरती तो हैं पर उस को अकेला नहीं रहने देतीं । मनुष्य के लिए तब न कोई मूल्य रहेगा न न्याय या तर्कसंगति (justification) इसीलिए सार्त्र कहते हैं कि man is condemned to be free. वह अपनी उत्पत्ति का खुद ज़िम्मेवार नहीं इस लिये 'कंडमेण्ड' । अनीश्वरत्त्व की स्थिति में वह 'मुक्त' है । मानव नियति की तीसरी विशेषता है– नैराश्य (despair) । दार्शनिक दृष्टि से नैराश्य की धारणा यों की जाती है—हम अपने आप को अपनी सीमाओं में सीमित करते हैं । ये सीमाएँ हमारी इच्छा द्वारा बनती हैं । यानि कि मुक्त होने के नाते हम जैसा कहते हैं वैसा अपना संदर्भ बनाते हैं और फिर उसी के द्वारा नियमित होते हैं । इस संदर्भ की सीमितता हमारे भीतर नैराश्य को जन्म देती है ।

मृत्यु, विवाद, अवसाद, नैराश्य, परित्याग, यातना—ये अस्तित्त्व की निर्मिति की उत्तरदायी इकाइयाँ हैं जिनका आधार अस्तित्त्ववादी विचारक चिंतक और लेखक लेते हैं । खुद अस्तित्त्ववादी इस बात के प्रति चेतन हैं कि उन्हें इन ही इकाइयों का बखान करके जीवन में निराशावादिता का प्रचार करने का दोषी ठहराया जाता है । वास्तव में बात कुछ ऐसी ही है । अस्तित्त्ववाद ने साहित्य, विशेषकर गल्प को काफ़ी प्रभावित किया है । चेस्टोव, काफ्का, आलबेयर कामू 'खुद' ज्याँ पाल सार्त्र सीधे मानव व्यक्तित्त्व का अव-

लोकन अस्तित्ववादी दृष्टि से करते हैं। इनके अतिरिक्त हमारे परिवेश की एकरसता, ऊब, निरर्थकता आदि दूसरे समकालीन साहित्यकारों की रचना में व्यक्त हुई हैं जिनमें सैमुएल बेकेट, हेनरी जेम्स, जेम्स डवाइस, यूजीन आइनेस्को प्रभृति लेखक प्रमुख हैं। प्रश्न उठता है कि क्या इन लेखकों का उद्देश्य जीवन को अन्धकारमय कर देना है ? सार्त्र से जब पूछा गया कि आप के चरित्र निराशावादी क्यों होते हैं तो उनका उत्तर था कि एक अस्तित्त्ववादी के चित्रित चरित्र अपनी कमज़ोरियों के खुद उत्तरदायी होते हैं। कोई कायर इसलिए नहीं कि उसका हृदय, फेंफड़े या मस्तिष्क कायर हैं या उसका मनोवैज्ञानिक रचाव ही ऐसा है बल्कि इसलिए कि उसने अपनी इच्छा से अपने कर्म से खुद को ऐसा बनाया है। कायरता किसी के आगे झुकने या हार मानने की क्रिया का नाम है। स्वभाव क्रिया नहीं होता। कायर पुरुष कायर कर्म से जाना जाता है। इसी तरह वीर पुरुष, वीर कर्म से बनता है। कर्म के द्वारा ही वह ऐसा बना रह सकता है या अनबना हो सकता है। सम्पूर्ण प्रतिबद्धता ही महत्त्व रखती है। अस्तित्त्ववादी जीवन के छोटे-छोटे क्रियाकलापों को नहीं लेता क्योंकि उन से पूर्ण प्रतिबद्धता नहीं जानी जा सकती।[१] इस दृष्टि से अस्तित्त्ववाद निराशा का दर्शन नहीं बन जाता। यह मनुष्य को निठल्लेपन का उपदेश नहीं देता क्योंकि इस के अनुसार मानव की नियति उसके कर्म में है। वह खुद अपना नियंता है। वह एक निर्जीव विषय नहीं। हर भौतिकवादी दर्शन मनुष्य को विषय की ही तरह लेता है लेकिन अस्तित्त्ववादी उसे भौतिक जगत् से भिन्न पथ पर आसीन कर देता है।[२]

मनुष्य को उसके कर्मों के ही भविष्य से जोड़ना अस्तित्त्ववादी चाहते हैं। हीडेगर, कार्ल यास्पर्स प्रभृति दार्शनिक मनुष्य को इस अनुभूति से परिपूरित मानते हैं कि उसके अस्तित्त्व की संभावना उसकी कर्मशक्ति से जुड़ी है। लेकिन कर्मों की प्रतिबद्धता का परिणाम अधिकतर मनुष्य के सुविधापूर्ण जीवन के अन्यथा के रूप में निकलता है। वेदना मनुष्य की संगिनी बन जाती है। अस्तित्त्ववादी दार्शनिकों ने यूरोप की संघर्ष और युद्धविद् जनता को देखा—दोनों महायुद्धों में सबसे बड़ा शिकार यूरोप ही बना रहा। जर्मनी

१ Existentialism and Humanism—J. P. Sartre, p. 43.

२ Our aim is precisely to establish the human kingdom as a pattern of values in distinction from the material world. Ibid, p. 45.

और फ्रांस सब से ज़्यादा इस तबाही से जुड़े रहे। विशेषकर दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान फ्रांस के जर्मनी द्वारा घिरे रहने का परिणाम यह निकला कि मनुष्य-व्यक्तित्व की गरिमा ठण्डी पड़ गई। सार्त्र खुद रेजिस्टेंस के लिए कार्य करते रहे। कामू ने भी इसमें बढकर भाग लिया। सार्त्र को पूर्वी यूरोप के अन्तर्गत लोकप्रिय हो रहे समाजवाद में मानव भविष्य का-दलित मनुष्य का स्वर्ण प्रभात नज़र आया और वे वामपंथी राजनीति के समर्थक बन बैठे। सार्त्र एक विचित्र योग हैं निराशावादी-भासमान अस्तित्ववाद और साम्यवाद—(घोषित प्रगतिशील साम्यवाद) के। अल्जीरिया के स्वतंत्र होने के दिनों आत्यंतिक राजनीति में विश्वास करने वाले अत्यंत— दक्षिणपंथी एवं गुप्त दल OAS ने साम्यवादी अभियुक्त करार देकर सार्त्र का घर ही पेरिस में बम से उड़ाया था। यह एक अंत है। दूसरा अंत यह है साम्यवादी, सामाजिक यथार्थ को ही साहित्यलोचन में सार्वदेशिक मानदण्ड मानने वाले आलोचक केवल सार्त्र को अपनी बिरादरी में शामिल न करने को ही तैयार नहीं बल्कि उसके अस्तित्ववाद का खुल कर विरोध करते हैं। सार्त्र मार्क्सवाद की पूँजीवादी व्याख्या से सहमत हैं और मानव नियति की भीषणता की ज़िम्मेदारी अंततः बुर्जुआ समाज पर डालते हैं। प्रसिद्ध हंगेरीयन आलोचक लूकाच[१] अस्तित्ववाद को बुर्जुआ बुद्धिजीवियों का एक ऐसा प्रयास बताते हैं जो भौतिकवाद से पर है और केवल दिवाला ग्रस्त आदर्शवाद है। वे मानते हैं कि सोवियत रूस में ऐतिहासिक समाजवाद एक सत्य बन गया है और अस्तित्ववादी इस से भागकर विचारों और आदर्शों के रहस्यात्मक जगत् में ही रमना पसंद करते है।[२] जहाँ तक सार्त्र का सम्बन्ध है अस्तित्ववादियों के सम्बंधों में यहीं कहा जा सकता है वे मानव का मानव के द्वारा शोषणया दमन काफ़ी देख-सह चुके हैं औरअत, साम्यबादी समतावाद और मानवकल्याण से आकृष्ट होते हैं। इस संदर्भ में उनकी आत्मकथा 'Le Mots'[3] द्रष्टव्य है।

सार्त्र की मानवतावादी धारणा की स्थिति और आज के सभ्य चितंनशील दार्शनिक समाज में उसको मिलने वाली मान्यता का इससे बढ़ कर क्या प्रमाण मिल सकता है कि अभी गतवर्ष प्रसिद्ध दार्शनिक बर्टण्ड रसल ने

१ Six Existentialist Thinkers, p. 156.
२ Reality, Man and Existence, p. 14.
3 Reading—The Word—J. P. Sartre

वियतनाम में युद्धापराधों के लिए अमरीका को न्याय के कठघरे में खड़ा करके उसे जिस ट्रिब्यूबल (न्ययाधिकरण) के द्वारा कंडेल कराया था उसके अध्यक्ष ज्याँ पॉल सार्त्र थे।

समवर्ती चिंतन के क्षेत्र में अस्तित्ववाद सबसे महत्त्वपूर्ण और मौलिक विचार-धारा है। यह समसामयिक व्यक्ति के विखण्डित होते हुए व्यक्तित्व को सहानुभूतिपूर्वक समझने का गम्भीर प्रयास है। ईश्वर, या कहें ठोस आस्तिकता की अनुपस्थिति में भी मनुष्य की गति की यह तर्क-संगत व्याख्या करता है। लेकिन यह एक अनात्मवादी दर्शन नहीं है। केवल सारेन कीर्केगार्द ने खुलकर ईसाइयत की आस्थामय व्याख्या पर अपने अस्तित्ववाद को आधारित किया और केवल नीत्शे ने खुलकर घोषणा की कि ईश्वर मर गया है। शेष सब दार्शनिक कहीं न कहीं धर्म, ईश्वर, आत्मा और जगत् की सीमाओं को छूते मानव को ही उभारते रहे। सार्त्र ने ईश्वर के न होने की बात की। लेकिन यह भी माना कि मनुष्य ईश्वर होने की कामना का नाम है और ईश्वर मात्र मनुष्य का प्रक्षेप (projection) है। भारतीय दर्शन जीव और जगत्, सत् चित् और आनन्द, आत्मा और परमात्मा के पारस्परिक संबंधों की व्याख्याओं का अनन्य, अनुपम और असमाप्य कोष है और बहुत स्थानों पर अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने औपनिषद दर्शन से सीधा प्रभाव ग्रहण किया है। पर इसका कोई न क़ोई कारण अवश्य होनाचाहिए। कि भारतीय दर्शन की अस्तित्वपरक व्याख्या आधुनिक मस्तिष्क के लिए उतनी ग्राह्य क्यों नहीं रही जितनी कि पाश्चात्य अस्तित्ववादी व्याख्या। यद्यपि आर० एन० कौल जैसे दर्शन के अध्यापकों और व्याख्याताओं ने क़दम-क़दम पर भारतीय चिंता-धारा में पाश्चात्त्य अस्तित्ववादी दार्शनिकों के समानांतर संदर्भों की उपस्थिति की ओर संकेत किया है,[1] फिर भी इस संबंध में देने योग्य तर्क की तीव्रता का द्योतक नहीं बन जाता। मेरी राय है कि अस्तित्त्व का प्रश्न भारतीय दर्शन में कितना भी विस्तारेन विश्लेषित क्यों न हुआ हो—वह एक शाश्वत अस्तित्त्व का शाश्वत विश्लेषण ही है। भारतीय दार्शनिक मनुष्य की प्रकृति को सार्वकालिक और शाश्वत मानकर उसकी एक सार्वकालिक व्याख्या देते थे। अस्थिर, सामयिक, ऊहापोह या

[1] देखिये कौल की Immediacy, Reason and Existence का Existence–philosophy परिच्छेद।

परिवर्त्तन मानव की मूल प्रकृति में परिवर्तन नहीं ला सकते-यह उनका विश्वास था जबकि पिछली दो शदियों में यूरोप (और अतः विश्व, क्योंकि सौभाग्य या दुर्भाग्य से यूरोप ही विश्व है, पश्चिम ही जीवन, चिंतन, मनन का स्रोत और आगार माना जा रहा है।) औद्योगिक क्रांति और दो महा-युद्धों की संक्रान्ति से गुज़र कर एक नया दर्शन दे सका। अस्तित्त्ववादियों ने इसी संदर्भ में मानवस्थिति को देखा और अपना दर्शन स्थिर किया। भारतीय दार्शनिक ईश्वर के न होने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे, पश्चिम में इसे ही प्रमेय माना गया। शायद यही कारण है कि हमें अपने संक्रान्ति युग का वस्तुपरक व्याख्याता अस्तित्त्ववाद ही लगता है।

[सभी प्रयुक्त परिभाषिक शब्द, शिक्षा-मंत्रालय, भारत-सरकार द्वारा प्रकाशित "परिभाषिक शब्द-संग्रह" (1962) से लिए गए हैं।]

चाहिए अच्छों को जितना चाहिए।
ये अगर चाहें तो फिर क्या चाहिए॥

—गालिब

• • •

जो नेकी लेकर आवे तो उसके लिए उसका दसगुना है; और जो बदी लेकर आये तो उसके बराबर बदला दिया जायेगा'।

कुर्आन शरीफ सू० ६/आ० १६०

• • •

पुरुष दियासलाई को अपनी ओर मार कर जलाते हैं और स्त्रियाँ अपने से विपरीत दिशा में; विश्वास न हो तो चुपचाप देखें।

—सम्पादक

डूबता हुआ शहर

शशिशेखर तोषखानी
एम० ए० (अनुसन्धित्सु)

*

वे सब डूब चुके हैं—
कराहती हुई छतें जिनके कंधे सूर्यास्त को ढोते-ढोते
टूट चुके थे
खिड़कियाँ : जिनके भीतर उस राजकुमारी की रहस्यकथा
बंद थी
जिसे राक्षस की कैद से बचाने को
सदा ही आता रहा है कोई नायक
द्वार : जिन पर चिपकाये गये थे
सूरज आलोकित आकाशों के विज्ञापन।
वे सब डूब गये हैं!
क्या तुम नहीं सुन पा रहे हो इस गरज रहे अँधेरे की आवाज़!
अखबार में नहीं छपी है इस दुर्घटना की छोटी-सी भी खबर
नेताओं के भाषण में इसका कोई हवाला नहीं
तुम जिस चट्टान पर टाँगें फैलाये
अखबार से मुँह ढाँपे सोये हो
वह मेरा एकान्त है
जहाँ पहुँचकर मैं अपना आप हो जाता हूँ।
गरज रहा है अंधेरा
और डूबती जा रही हैं दिशायें
डूबती जा रही हैं परिचित-अपरिचित सभी आकृतियाँ

तुम जो मेरे एकान्त पर पाँव पसार कर
सुस्ता रहे हो
मैं तुम्हें अपने रक्त में अनुभव कर रहा हूँ
शायद मैं तुम हूँ
और चारों ओर केवल अँधेरा हूँ
और खालीपन—
जिसके साथ ताकत की आज़माइश संभव नहीं
क्योंकि वह कुछ भी नहीं है।
जिस चाकू से मैंने उसकी हत्या करनी चाही थी
वह मेरे ही भीतर कहीं गहरा उतरकर
मुझे लहू लुहान कर चुका है
नहीं मुझमें अनयत शक्ति नहीं
कि मैं अपने में या तुम में
या किसी में
उस सूरजमुखी को बो सकूँ
जो इस दृश्य को दे सकता है भिन्न संदर्भ !
अंधेरे में सब कुछ डूब चुका है
केवल हाथ-पाँव मारते हैं कुछ शब्द
सहायता के लिए पुकारते हुए
मैं उन्हें डूबते से बचा नहीं सकता
क्योंकि मैं नहीं हूँ हाथ
मैं नहीं हूँ पाँव
मैं नहीं हूँ मन और मस्तिष्क
मैं केवल आँख हूँ
जिसके भीतर डूब गया है एक पूरा शहर।

‘प्राचीन शास्त्रों में कश्मीर का वर्णन’

बद्रीनाथ कल्ला
एम० ए०, शास्त्री, बी० एड०

※

कश्मीर देश भारतवर्ष के उत्तर में उसके शीर्ष-स्थान की तरह है। इस देश के इतिहास और साहित्य में काश्मीर या कश्मीर बहुत प्रसिद्ध रहा है। कश्मीर शब्द का प्रयोग संस्कृत-साहित्य में अनेक रूपों में पाया जाता है। इसकी व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों के अनेक मत हैं। ‘कश्मीर’ शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में वैयाकरणों का यह मत है कि ‘कश्मीर’ शब्द में ‘कशेर्मुट् च’ इस औणादिक सूत्र से कश् धातु से ‘ईरन्’ प्रत्यय तथा ‘मुट्’ आगम करने पर ‘कश्मीर’ शब्द की सिद्धि होती है। ‘कश्मीरश्च देशविशेषः’ इति त्रिकाण्डशेषः। कश् धातु प्रकाशन के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे-कशति=प्रकाशते विविधविद्या सदाचार-शासन समृद्ध्याभिरि ‘कश्मीरः’। अर्थात् विविध प्रकार की विद्या, सदाचार, शासन, समृद्धि आदि पदार्थों को जो प्रकाशित करता है वह कश्मीर कहा जाता है। ‘कश्मीर एवं काश्मीरः’ अर्थात् कश्मीर ही काश्मीर है। यहाँ ‘स्वार्थे’ अण् प्रत्यय लगने से काश्मीर बन जाता है। कश्मीर के प्राचीन ऐतिहासिक काव्य ‘नीलमत्पुराण’ में कश्मीर शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है :—

कः प्रजापतिरुद्दिष्टः कश्यपश्च प्रजापतिः।
तेनासौ निर्मितो देशः कश्मीराख्यो भविष्यति ॥२६१॥

अर्थ :—‘क’ वर्ण से प्रजापति तथा कश्यप प्रजापति का अर्थ ग्रहण

किया जाता है। उसी के द्वारा बनाया हुआ यह देश कश्मीर नाम से प्रसिद्ध होगा।

कं वारि हरिणा यस्माद् देशादस्मादपाकृतम्।
कश्मीराख्यं ततो ह्यस्य नाम लोके भविष्यति ।।२६२।।इति।।

अर्थ :—'कं' वर्ण से पानी का अर्थ ग्रहण किया जाता है। जिसने इस देश से पानी दूर किया। इसलिये इसका नाम संसार में 'कश्मीर' होगा।

उक्त दोनों श्लोकों में कश्मीर शब्द की निरुक्ति दो प्रकार से पाई जाती है (१) कश्यप प्रजापति के द्वारा बनाया हुआ यह देश 'कश्मीर' है तथा दूसरी यह कि (२) किसने इस देश से पानी दूर किया है।

कुछ विद्वान् 'कश्मीर' शब्द की कल्पना इस प्रकार करते हैं। कश्यप प्रजापति की यह तपोभूमि है। यहाँ ही प्रसिद्ध मिहिर-मन्दिर (मार्तण्ड मन्दिर) स्थापति हुआ। इस प्रकार 'कश्यप और मिहिर' इन दोनों संयुक्त नामों का अपभ्रंश रूप कश्मीर शब्द है। साथ ही कुछ विद्वान् 'कश्मलमीरयति=इति कश्मीरः' अर्थात् जो पाप रूप मलों को दूर करता है अर्थात् जहाँ साधक लोग तपस्या द्वारा अपनी आत्मा के मलों-आणव, मायीय, और कार्म मलों का परिहार करने की साधना करते हैं वह कश्मीर है, इस प्रकार इसकी व्युत्पत्ति बताते हैं और 'पृषोदराद्वितात्' से इसकी रूपसिद्धि करते हैं।

कश्मीर शब्द अति प्राचीन शब्द है। संस्कृत-साहित्य के प्राचीन महाकाव्यों-रामायण तथा महाभारत में इसका प्रयोग स्पष्ट रूप से पाया जाता है जैसे :—'काश्मीरे कपिलेश्वरः' वाल्मीकीय रामायण में सीता के अन्वेषण-प्रसङ्ग में 'काश्मीर' शब्द का उल्लेख हुआ है, यथा—

काश्मीर मण्डलं सर्वं शमीपीलुवनानि च।
पुराणि च सशैलानि विचिन्वन्तु वनौकसः।।

अर्थ :—हे वनवासियो ! समस्त कश्मीर-मण्डल, शमी तथा पीलु वृक्ष के वनों एवं पार्वतीय प्रदेशों तथा नगरों में सीता की खोज लगाओ। इसी प्रकार महाभारत में भी कश्मीर शब्द आया है—

काश्मीरा सिन्धु वीरा गन्धारा दर्शकास्तथा।इति।

अन्य शास्त्रों के प्रमाण्य से भी काश्मीर का प्राचीनत्त्वसिद्ध है। कश्मीर में बहती हुई 'वितस्ता' नाम की नदी वैदिककाल से ही प्रसिद्ध है। इसीलिए

यह देश भी प्राचीनकाल से प्रसिद्ध है। कल्हण कृत 'राजतरङ्गिणी' से स्पष्ट होता है कि यह जलप्रलय के समय मत्स्यावतार के अनन्तर ही प्रकट हुआ था। जैसे कहा भी गया है :

पुरा सतीसरः कल्पारम्भात् प्रभृतिभूरभूत्।
कुक्षौ हिमाद्रेरर्णोभिः पूर्णा मन्वन्तराणि षट्॥
अथ वैवस्वतीयेऽस्मिन् प्राप्ते मन्वन्तरे सुरान्।
द्रुहिणोपेन्द्ररुद्रादीनवतार्य प्रजासृजा॥
कश्यपेन तदन्तःस्थं घातयित्वा जलोद्भवम्।
निर्ममे तत्सरो भूयः काश्मीर इति मण्डलम्॥
उद्यद्वैतस्तनिष्यन्द दण्डकुण्डातपत्रिणा।
यत्सर्वनागाधीशेन नीलेनपरिपाल्यते॥इति॥

अर्थ :—पहले कल्पारम्भ से लेकर सतीसर का भूभाग हिमालय के नितम्ब (मध्य-भाग) भाग तक छः मन्वन्तर पर्यन्त जलपूर्ण था। इस वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होने पर स्रष्टा ने ब्रह्मा, विष्णु, तथा रुद्र आदि देवताओं का अवतार धारण करवाकर कश्यप महर्षि ने प्रजापति के द्वारा सतीसर के मध्य में रहने वाले जलोद्भव नामक राक्षस को मरवाकर उस सर को कश्मीर-मण्डल के नाम से निर्माण किया। उदीयमान वितस्ता के प्रवाहरूप दण्ड एवं नीलकुण्ड (नाग) के छत्र धारण करने वाले समस्त नागों के अधिपति नील नाग के द्वारा जिस कश्मीर देश का परिपालन किया जाता है।

कश्मीर-मण्डल के परिमाण के विषय में भी उल्लेख आया है जिससे सम्बन्धित श्लोक इस प्रकार है :

षष्टिग्रामसहस्राणि षष्टिग्रामशतानि च।
षष्टिग्रामास्त्रयो ग्रामा ह्येतत्कश्मीरमण्डलम्॥इति॥

यद्यपि इस श्लोक के अनुसार ६०६६३ गाँव गवेषणापूर्ण गणना से इस समय कश्मीर में प्राप्त नहीं किये जाते हैं तथापि चिरकाल के अनन्तर समय-समय पर जलविप्लव के कारण इन सब गाँवों का होना सम्भव है। अन्य पुस्तकों में भी इसी प्रकार काश्मीर का परिमाण पाया जाता है। जैसे :

शारदामठमारभ्य कुङ्कुमाद्रितरान्तगः।
तावत्कश्मीरदेशः स्यात् पञ्चाशद्योजनात्मकः॥ इति शब्दकल्पद्रुमे

अर्थ :—शारदा मठ से लेकर कष्टवार के अन्त तक ५०० योजनों वाला कश्मीर देश हो ।

कश्मीर का एक दूसरा नाम शारदा देश भी है । कश्मीर के प्रसिद्ध कवि बिल्हण ने अपने महाकाव्य 'विक्रमाङ्कदेवचरित' के प्रथम सर्ग में अपनी सुन्दर मातृभूमि को श्रद्धांजलि भेंट करते हुए लिखा था :

सहोदराः कुंकमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः ।
न शारदादेशमपास्यदृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः ।।

अर्थ :—कुंकुमकेसर और काव्य-विलास आपस में सगे भाई हैं। शारदा देश को छोड़कर दूसरी जगह मैंने इनको साथ-साथ नहीं देखा।

आज कश्मीर में दुर्भाग्य से काव्य के वे अंग तो नहीं रहे, किन्तु उसका प्राकृतिक सौन्दर्य आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है । काश्मीर की भौगोलिक सीमा के विषय में यह कहा जा सकता है कि इसके उत्तर में पामीर पर्वत है, जिसे प्राचीन समय में कम्बोज देश कहते थे । आजकल चीन और रूस के राज्य यहाँ मिलते हैं । भारतवर्ष और कम्बोज के बीच का रास्ता व्यापार के लिए बहुत प्रसिद्ध था और कश्मीर के उत्तर-पश्चिम का भाग जो प्राचीन काल में दरद देश कहलाता था, इस यातायात मार्ग की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी था।

काश्मीर के पूर्व में तिब्बत का प्रदेश है । भाषा और संस्कृति की दृष्टि से काश्मीर का पूर्व भाग या लद्दाख छोटा तिब्बत ही है । विद्वानों के अनुसार लद्दाख का प्राचीन नाम ललाटाक्ष था जिसका उल्लेख महाभारत में आया है ।

काश्मीर का दक्षिण प्रदेश जम्मू कहलाता है । इसका प्राचीन नाम दार्व था और इसीसे मिला हुआ पुंछ (पर्णोत्स) और राजोरी (राजपुरी) का प्रदेश अभिसार कहलाता था जिससे आजकल का हज़ारा नाम बना है। सिन्धु और वितस्ता काश्मीर की प्रसिद्ध नदियाँ हैं। सिन्धु कश्मीर में पहाड़ों पर बही है । दरद देश में पहुँच कर सिन्धु नदी मैदान में उतरती है । इसी कारण दारदी सिन्धु नाम संस्कृत-साहित्य में प्रसिद्ध है । वितस्ता या व्यथ कश्मीर की घाटी की सुन्दरतम नदी है । इसी पर्वत द्रोणी के मध्य में कश्मीर को 'बूलर' नामक झील है जो इस घाटी की जलधाराओं को समेट कर रखने में बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य करती है ।

मोतियों का भार

नैन्सी दर
(एम० ए० उत्तरार्द्ध)

*

दीर्घ निश्वासों के सुनहरे धागे में पिरोकर
टूटे दिल की अधूरी तमन्ना की
गाँठ बाँधकर
मैंने,
बेदाग, आँसुओं का एक
हार बनाया है।
सच्चे मोतियों में भी क्या आब होगी
जो इनमें झिलमिला रही है।
अरे!
रुक क्यों गया?
मेरे पास आ; मेरे नज़दीक आ
यह तुझे पहिनाने के लिए ही तो—बनाया है।
मेरे पास आ; मेरे नज़दीक आ।
मैं तुझे उस ठण्डी आग में तपे,
सुनहरे डोरों का हार पहिनाऊँगी
जो तुझे शीतल करती है—
मगर, मुझे जलाती है।
तू खुशी से झूम जा,
इस हार की चमक में—मौज के तराने गा।
मेरे पास आ; मेरे नज़दीक आ!

तेरी प्रसन्नता के नृत्य की
प्रत्येक ताल पर
मैं, एक एक मोती वारूँगी
मेरे पास, उनकी कोई कमी नहीं है।
जब उन्मत्त होकर तू
इस हार को तोड़ फेंकेगा
तब मैं तुरन्त—
एक और नया हार; तुझे पहिनाऊँगी
तेरा काम तोड़ना है
मेरा काम; निरन्तर हार पिरोना है।

× × ×

तुझे फूल की क्या चिन्ता ?
इधर एक कुम्हलाया
तुरत
उधर दूसरा पाया !
फूल के लिए गुँजित वसन्त
एक बार आता है,
तेरे लिये फूलों भरा वसन्त—बार बार आता है।
ये अनमोल मोतियों का हार
मैं तुझे, मुफ्त नहीं देती हूँ
इसके बदले पीड़ित-प्रीति का
अक्षुण्ण ख़जाना लेती हूँ—
जिसे मैं, अन्तर में सँजोकर
उस पर, नेत्रों का पहरा लगाती हूँ।
परन्तु—
ये पहरेदार ही; तुझसे मिले हैं—मुझसे धोखा करते हैं
मेरे ख़जाने की पूँजी
चुपचाप, चोरी चोरी
तुझ तक पहुँचा देते हैं।
परन्तु आश्चर्य यह है, कि
जितनी ये चोरी करते हैं; उतनी ही

मेरी पूँजी बढ़ती है; और
मुझसे सँभाले नहीं सँभलती है।
ले लो निर्दयी, अपना ये दाय
मुझसे नहीं सहा जाता—ये मोतियों का भार
अनन्त मोतियों के बोझे के नीचे; मैं दबी जाती हूँ
आ, मेरे नज़दीक आ; मेरे पास आ
अपनी प्रीति की पूँजी को,
सहर्ष पा,
डर मत
मेरे नज़दीक आ; मेरे पास आ!

ग्रालुन् छु बुज़िमंलि ति ग्रंटै,
ग्रालुन् छु मन्दिन्यन् गंटिकार,
ग्रालुन छु पान पंनुन् कंडुन ग्रंटै
ह्यंति म्ालि सन्तोष, वाती पानै!

—लल्लेश्वरी

सहन करना वास्तव में क्या है? सहन करने का अभिप्राय: है—बिजली और उसकी गरजती कड़क को अपने ऊपर लेना। सहन करने का अभिप्राय: है संध्या के समय भयंकर अन्धकार को झेलना। सहन करने का अभिप्राय: है स्वयं को चक्की में पीस ड़ालना। यदि (इस प्रकार) सन्तोष की भावना को तुम धारण करो तो वह स्वयं ही तुम्हारे पास आ जाएगा।

डॉ० मुहम्मद अयूबखाँ
'प्रेमी'

दुहरी टूटन

*

आज अभी-अभी मुझे ऐसा लगा जैसे मैं एक सुलगती डाल पर बैठा हुआ एक पंछी हूँ लेकिन फिर भी किसी प्रकार की घुटन या टूटन महसूस नहीं हो रही। शायद दर्द गहराई में उतरकर किसी ज्योति को खोजने के लिए कहीं दूर चला गया है और इस समय मेरे अस्तित्त्व को अर्थहीन बनाकर पीछे छोड़ गया है। सामने वही भीगा हुआ पत्र पड़ा हुआ है जिसके अर्थ को पन्द्रह-बीस बार निचोड़ने के बावजूद फिर मरोड़ने लगता हूँ। दिमाग में अक्षर कील की तरह चुभने लगते हैं और फिर चेतना जाग जाती है। उसने लिखा था—"जीवन की संध्या में धुंधलके के बावजूद भी आज मैं अपने प्रेम की छोटी पोथी के पन्ने उलट रही हूँ। तुम तो जानते हो कि जब मैं अपनी ज़िद्द पर उतर आती हूँ तो मुझे कोई रोक नहीं सकता। आँखों की रोशनी थक कर सोने वाली है लेकिन अन्दर की रोशनी की कुछ किरणें मन के प्याले में भर रही हूँ। क्या यह रोशनी कभी बीत सकती है? कभी नहीं। दिन तो किसी न किसी प्रकार गुज़र जाता है लेकिन रात इस रोशनी से लड़ने के लिए आती है तभी भयंकर अन्धेरे में कई बार तुम्हारी तुलना अपने पति से करने लगती हूँ।" मेरी आँखों के सामने उसके पति का चेहरा अपनी सौम्यता के साथ झूल जाता है। और फिर "हाँ, बहुत सी बातों में तुम दोनों एक से हो लेकिन कुछ बातों में ज़मीन—आसमान का अन्तर है। तुम एक ऐसे पत्थर हो जिससे उद्दाम सरिता की तरह लहराती हुई मैं टक्कर मार-मार कर बिखरने की साध लेकर जीना चाहती थी। ये एक गम्भीर समुद्र हैं जिसमें अब अपने अस्तित्त्व को सौंपने की इच्छा दृढ़वती हो उठी है। मेरे पति

जितना मेरा ख्याल रखते हैं तुम सौ जन्मों में भी नहीं रख सकते । वह देवता हैं और तुम कमज़ोर आदमी । यही परिस्थिति दुःखदायिनी है । मैं पछता रही हूँ कि पत्नी के रूप में उन्हें वह सब कुछ न दे सकी जिस पर उनका अधिकार था । ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि अगर दूसरा जन्म मिले तो मैं उन्हें अपने प्रियतम के रूप में पाऊँ और तुम्हें पति के रूप में ।" यहाँ आते ही मेरी आँखें अपने आप बन्द हो जाती हैं जैसे उसके अन्दर की रोशनी ने चकाचौंध पैदा की हो । वह आगे लिखती है—"मेरी हर रात शान्त समुद्र की भाँति थम सी जाती है । समय सूने तट की भाँति जकड़े रहता है और क्षणों का ढेर धीरे-धीरे अपनी चमक खो बैठता है । ऐसा लगता है कि आसमान के सभी तारे टूट-टूटकर मेरे इर्द-गिर्द जमा होते जा रहे हैं । जानते हो राजू ! यही पत्थर के टुकड़े मेरे अनमोल रत्न हैं अगर मर गई तो सर्पिणी बनकर इन्हीं को छुपाए हुए कुंडली मार कर बैठ जाऊँगी ।" इस भयंकर कल्पना से मुझे रोमांच हो उठता है । सहसा पसीने से लथपथ होने के बाद फिर पत्र के अक्षरों को बटोरने में लग जाता हूँ शायद इसी आशा से कि कोई विशेष संदर्भ-सूत्र मेरी पकड़ में आ जाए जो जीवन का संबल बन सके । "तुमने अपनी सहपाठिनी के बारे में लिखा था मैं तुमसे विनती करती हूँ कि उससे शादी करलो । तुम दोस्ती में इतने आगे बढ़ चुके हो कि अब पीछे लौटना अमानवीय है । हमारे समाज में लड़के और लड़की की मित्रता का कोई अर्थ नहीं । बहुत दिनों से मैं एक बात तुमसे छुपाए हुए बैठी थी । प्यारे राजू ! पहले वादा करो कि तुम मेरी इस आखिरी इच्छा को पूरी करोगे । कर लिया वादा ? हाँ अब सुनो । दो महीने पहले डॉ० ने मुझे हॉस्पिटल से छुट्टी दे दी थी । उम्मीद है कि टी० बी० की बीमारी मौत की अतल गहराई में दबोच देगी । फिर सब कुछ ठीक हो जाएगा । वादा करो तुम अफसोस नहीं करोगे और मेरी आखिरी इच्छा ज़रूर पूरी करोगे । मेरे राजू रा····जू । कड़वी हँसी हँसने के साथ पुरनम आँखों के नीले आकाश में फैलती धूप और बस-स्टैंड—

'नमस्ते जी' ।

'तुम यहाँ कैसे ?'

'इसी कालेज में नौकरी मिल गई है । ग्लैमर-गर्ल दिखाई देने वाली सहेली ने जबाब दिया ।'

"बहुत खुशी हुई शर्रो !" मैंने मुस्कराते हुए कहा ।

"लेकिन जनाब असली खुशी का दिन बाईस तारीख है।" उसकी सहेली ने हँसते हुए कहा।

"बाईस तारीख को क्या होने वाला है शर्रो !" मैंने बेसब्री के साथ पूछा।

शर्रो खामोश थी। चेहरे पर कुछ मुरझायी सी लज्जा पुत गई शायद धूप निकल आने पर उड़ गई। चेहरा ऐसा हो गया जैसे नवम्बर की पीली-पीली धूप में सूखी चिनार की पत्ती हो। अगस्त की तरुण धूप जो सेबों को अरुणाई देती थी जिसका स्पर्श होने से शर्रो के गुलाबी कपोलों पर अबीर की सी मसलन हो जाती थी। उस रोज़ नदी के किनारे अकेला बैठा हुआ था कि वह आई और मेरी खामोशी को टोका........"देखिए यह अच्छी बात नहीं है। आज पिकनिक के दिन आप खोये-खोये से नहीं रह सकते। आज तो हमारा साथ देना पड़ेगा।" यह सुनकर मैं चौक पड़ा था। चौंका क्यों ? सवाल सुनना ही पड़ा। "आप कहाँ रहा करते हैं श्रीमान् जी ! और सच बात थी मैं बहुत दूर चला गया था। किरण ने कहा था—"आज पिकनिक के दिन वह गीत तुम्हें सुनाना ही पड़ेगा।"

"कौन सा ?"

"वही जिसमें तुमने मुझे रूप-गन्ध की सरिता कहा है। जब तुम थक जाओगे तो यही सरिता अपनी लहरों की सेज पर तुम्हें सुला लेगी।"

"तुम भी अब कविता करने लगीं !"

"क्यों नहीं ? तुम्हारा कुछ तो असर पड़ना ही चाहिये। राजू, सच कहती हूँ मैंने तुम्हें अपनी पूजा में बसा लिया है। अब तुम्हीं मेरे अन्तर के दीप बन कर मुझे रोशन कर रहे हो।"

"किरण, मुझे डर लगता है कि कहीं तुम वीणा की करुण रागिनी न बन जाना।"

"तो क्या होगा ! तुम उसमें स्वर-सरगम की तरह बसे रहोगे।"

और उस रोज का वही मज़ाक कड़वा सत्य बन गया। दूर कहीं न भाग सका। किरण की शादी हुई। शादी के बाद वह जब वापस आई तो मैंने पूछा—

'कहो कैसी हो।'

वह ठहाका मार कर हँस पड़ी थी और फिर थोड़ी देर बाद फूट-फूट कर रोने लगी थी। मैं अवाक् देखता रह गया उसे।

किरण को सुन्दर और सुशील वर मिला था-कोई ऊँचा आफीसर। मैंने उसकी शादी में इतना काम किया कि किसी से दो मिनट बातें करने का समय भी न निकाल सका। मैंने उसे समझाया और जितना समझाया उतनी ही ज़्यादा वह रोई। फिर मुझसे न रहा गया—

"आखिर तुम रोती क्यों हो ? क्या किसीने तुम्हारा दिल दुखाया है ?"

"हाँ।"

"किसने !"

"तुमने"

"मैंने !"

"हाँ, हाँ तुमने।"

"किरण यह तुम क्या कह रही हो। तुम्हारी शादी पर जितना मैं खुश हुआ हूँ उतना शायद ही कोई हुआ होगा। ईश्वर तुम्हारे सुहाग को हमेशा महफ़ूज़ रखे। तुम मुझे गलत समझ रही हो। मैं इतना नीच नहीं हूँ। तुम्हें सुखी देखकर मुझे बिलकुल जलन नहीं हुई। मुझे यकीन है कि तुम्हें मेरा उपहार पसन्द आया होगा—वह जूड़े के पिन।"

"बस इसी बात का तो अफसोस है" वह रोती हुई कहने लगी—"तुमने मेरे साथ मज़ाक किया है। मेरी भावनाओं से खेलकर तुम्हें क्या मिला ? मैं समझती थी कि तुम्हें मुझसे सच्चा प्रेम है लेकिन सब कुछ झूठ निकला। मेरी शादी की खबर पाकर तुम रोये क्यों नहीं, मुझे रुलाया क्यों नहीं ? तुम में बगावत क्यों नहीं पैदा हुई ? मुझे खुशी नहीं चाहिये। मुझे जूड़े की पिन नहीं चाहिये। मुझे चाहिए तुम्हारे आँसू जो दुनियाँ की हर चीज़ से खूबसूरत उपहार हैं। काश ! तुम मेरी शादी पर जलते। शादी के बाद जिस रूप में देखने की लालसा मुझे यहाँ तक ले आई वह पूरी न हुई। मैंने सोचा था कि मेरा राजीव जब मुझे देखेगा तो जलते हुए सूखी पपड़ी वाले होठों से पतझर के सूने मौसम की तरह रूखी-रूखी आँखों से घृणा के भाव दर्शायेगा। वह घृणा मेरे लिए अनमोल वस्तु होगी। फिर हम एक दूसरे की जली-कटी बातें सुनते-सुनाते उन परिस्थितियों पर विचार करते और अपने अनुकूल कोई राह बना पाते—"

और फिर उस दिन के बाद कमरे में पहाड़ आँसू बहाता रहा। चाँद ने तकिये में मुँह छपा लिया। अब हवा के मामूली से आघात पर इस ऊँचे

देवदारु को झुकने में कोई लाज नहीं लगती। हर आघात से यह अन्दर ही अन्दर टूटता रहता है।

"अरे! आप फिर कहीं खो गए हैं" उसका सवाल फिर चौंका गया। मेरे हाथ को अपनी दोनों हथेलियों के बीच रखते हुए पूछा—"आप बताइए ना-प्लीज़। बार बार चौंक क्यों पड़ते हैं? अब चलिए, उठिए। सामने जो शिवजी का मन्दिर है वहां तक सैर करें। देखिए, कैसा सुन्दर दृश्य है। इच्छा होती है कि कोई मुझे कविता लिखना सिखा दे। आप सिखा सकते हैं? मेरे अन्दर कविता के भाव तो हैं पर एक्सप्रेस करना नहीं जानती। आइए, इस चश्मे का ठंडा पानी पियें! हैं, हैं……न न ना आप न उतरिये; मैं अपने हाथों से पिलाऊँगी।"

"वह कैसे?"

"अपनी अंजलि में भरकर"

और शर्रो ने सचमुच अंजलि में पानी भर लिया। पहले तो झिझका लेकिन एक बच्चे की तरह शर्रो की आज्ञा को न टाल सका। शर्रो ने मेरे भीगे हुए रूमाल से अपने होठों को पोंछा।

"आप दर्दभरी कविताएँ क्यों लिखते हैं? बताइये न प्लीज आज मैं पूछ के ही रहूँगी।"

"शर्रो बड़ी किस्मत से ही दर्द मिला करता है। पहले मैं बड़ा कठोर आदमी था। सब सह लेता था। अब नहीं सहा जाता तो लिख लेता हूँ। यह दुहरी टूटन है। सब कुछ दुहरा है आँखें खोल कर देखिये तो वह बादलों से घिरा हुआ चाँद। आँखें बन्द करके देखिये तो अपने साथ भी एक चाँद बादलों से घिरा हुआ, टुकड़ों में टूटता चला गया है। एक टूटन बाहर एक अन्दर। बाहर की वस्तु ही अन्दर की टूटन पैदा करती है। ऐसे ही समय अन्दर की वस्तु पास बैठ जाती है। समय रथ की चाल से नहीं चल रहा, मन के वेग से भी तेज चाल है उसकी।" तभी शर्रो मेरा हाथ छोड़ कर उठ गई थी।

"आप बाईस तारीख को इनकी शादी में ज़रूर आयेंगे न!" सहेली ने फिर पूछा।

मैंने शर्रो की दृष्टि में बहुत सी टोकरियाँ उलट दीं। शर्रो की आँखों की तरलता में वे उसी तरह डूब गयीं जैसे कंकड़ तालाब में डूब जाते हैं। कई बार कुछ लहरें उछलीं लेकिन तटों ने उन्हें समेट लिया।

"आप बड़े बेरहम हैं। ऐसे लापता हुए कि आज मिले हैं। बेचारी शर्रो···।" फिर दो मिनट का सन्नाटा। बस भी आ गई थी। वे दोनों उसमें सवार होकर चल दीं। दृष्टि के सामने एक धूल का गुबार उठा। मैं कहना चाहता था "शर्रो मुझे माफ कर दो। तुमने मुझे एक मित्र की दृष्टि से देखा और मैंने निभाने की कोशिश की। इस बीच तुम्हारे दोस्त पर क्या गुज़री। ऐसे शुभ अवसर पर मैं कैसे तुम्हें बता सकता। तुम खुश रहो और यकीन करो कि मैं ऐसी मिट्टी का बना हुआ हूँ कि हर हालत में दूसरों के अनुसार ढल सकता हूँ। रहा अकेलापन तो मैं उससे समझौता कर चुका हूँ। एक बार तुम्हीं ने पूछा था—"आप कभी अपने अकेलेपन से ऊबते नहीं? आपका मौन कितना भयंकर है? इस वेमाप एकांत को कैसे जीत पाओगे?"

मैंने जबाव दिया था—"शर्रो मेरा हृदय निर्वासित नहीं है। मैं अकेला होता ही कब हूँ। बाहर से मैं जितना एकान्त दिखाई देता हूँ उतना ही अन्दर से कोलाहलपूर्ण। वहाँ मैं खेलता हूँ, हँसता हूँ, रोता हूँ, रूठता हूँ और मचलता हूँ।"

आज ही तो शर्रो की शादी का दिन है। पंछी सुलगती डाल पर बेसुध होता जा रहा है। उसके बेहूदे धुएँ में टँगा हुआ तनाव हड्डियों को हिलाता हुआ आत्मा में व्याप्त होता जा रहा है—समझ में नहीं आता क्या करूँ? किरण की चिन्ता की मुट्ठी भर राख पीकर सो जाऊँ? उसकी आखिरी इच्छा! हँसिये की तरहदुहरी होती हुई हड्डियों को मानो चीरती जा रही हो।

फिर घबराकर मैं बाहों में शून्य को कस लेता हूँ।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावन्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥

श्रीमद्भगवत् गीता २/४६

(जब सब ओर जल ही जल की बाढ़ आई हो, उस समय एक पोखर का जितना उपयोग होता है, उतना ही उपयोग ज्ञानी ब्राह्मण के लिए सब वेदों का है।)

जी भर सा आता है

वासन्ती जाला
एम० ए० (उत्तरार्द्ध)

*

दिवसावसान का बोझिल समय,
हल्की-हल्की रोशनी से जलते,
—दीपकों के नन्हे से प्रकाश में
संध्या धीरे-धीरे साथी पवन
की पीठ पर उतर आई।

× ×

बढ़ता हुआ घना अन्धेरा,
छुटपुट बादलों पर लदी, उतरती
शीतल मन्द इठलाती अँगड़ाती पवन;
पवन में बर्फ की धार, सबको
चुभती छेड़ती चली।

× × ×

हल्की-हल्की बूँदाबाँदी, अपने सम्पूर्ण वैभव को
लेकर, चारों ओर संगीत की सृष्टि कर रही है
मानो एक करुणा, एक मधुर
व्यथा फूट रही है; मन की समस्त
ग्लानि, सारी व्यथा आँसू बनकर बह रही है।
हिमाच्छादित शैल खण्डों से;
इठलाती झूमती निर्झरिणी से,
वृहद शिलाओं से टकरा-टकरा कर

दृष्टि लौट आती है।
सारी की सारी प्रकृति आज उलझन
का साक्षात रूप है।
कुछ दूर झील का शान्त किनारा है
पर उस ओर जो नज़र जाती है
तो दूर जाते-जाते रुक जाती है,
विस्तृत जल-राशि को—
पवन के झूले पर झूमती—
नन्ही बूँदें चूम रही हैं।
बुलबुले उठते हैं और फिर, दिल के
फफोलों से, फूट जाते हैं।

× ×

चंचल पवन शान्त जल-राशि
को हलचल से भर देती है
जी भर सा आता है।

'कोई स्त्री किसी मूर्ख को बुद्धिमान नहीं बना सकती, किन्तु कोई भी स्त्री किसी भी बुद्धिमान को मूर्ख बना सकती है।'

—लार्जेन्टीना

* * *

"फरीदा काले मैड़े कपड़े, काला मैड़ा वेस।
अवगुन ही भरिया मैं फिरआ, लोग कहें दरवेस।"

—बाबा फरीद

* * *

'अज्ञान नहीं, अपितु अज्ञान का अज्ञान, ज्ञान की मृत्यु है।'

—एल्फ्रेड नोर्थ व्हाईटहेड

कश्मीरी लोक गीत

डॉ० भूषणलाल कौल

*

लोक-गीत वह गीत अथवा गाना है जो लोक ने गाया हो। लोक समूची जनता है, साधारण जन समाज है। अतः उस जन-समूह के गान को लोक-गीत कहा जाता है। लोक-गीत, लोक-वार्ता (Folk Lore) का एक अङ्ग है। लोक-वार्त्ता अंग्रेज़ी के 'फोक लोर' का पर्यायवाची है। डॉ० सत्येन्द्र ने लोक-वार्ता के विषय में लिखा है—'लोक-वार्ता एक विशद अर्थ रखता है। इसके अंतर्गत वह समस्त आचार-विचार की सम्पत्ति आ जाती है जिसमें मानव का परम्परित रूप प्रत्यक्ष हो उठता है और जिसके स्रोत लोक मानस होते हैं, वे लोक मानस जिनमें परिमार्जन अथवा संस्कार की चेतना काम नहीं करती होती।'[1] लोक-गीत का रचयिता कोई एक विशेष पुरुष नहीं होता। मौखिक परम्परा से प्राप्त गीत इसके अंतर्गत लिये जाते हैं। लोक-गीत लोगों के आदि जीवन को प्रतिबिम्बित करते हैं। लोक-गीतों के पीछे एक परम्परा होती है जिसका सीधा सम्बन्ध समाज से है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने लिखा है—'लोक-गीतों में देश का वास्तविक चेहरा नज़र आता है। यह देश की अपनी आवाज़ है। अपनी बीती, हर प्रकार की बनावट से अछूती।'[2]

१ 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन'—डॉ० सत्येन्द्र, पृ० २।

२ 'धीरे बहो गंगा'—देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ० ३१।

कश्मीर घाटी भी लोक-साहित्य से भरी पड़ी है।[१] कश्मीरी भाषा में एक प्राचीन भाषा की तरह लोक गीतों एवं लोक-कथाओं का प्राचुर्य है। कश्मीरी साहित्य का आरम्भ भी लोक-गीतों से ही हुआ है। यह लोक-गीत प्रायः गाँव के स्वच्छन्द वातावरण में पलने वाले सीधे सादे तथा परिश्रमी ग्रामवासियों की भावनाओं को बहुत ही सुन्दर तथा मनमोहक रूप में प्रस्तुत करते हैं। ग्रामीण जीवन के साथ-साथ स्वच्छन्द प्रकृति का प्रतिबिम्ब भी हमें इन लोक-गीतों में स्पष्ट मिलता है। लोक-गीत कश्मीरी साहित्य की एक अमूल्य निधि है।[२] अध्ययन की सुविधा के लिए कश्मीरी लोक-गीतों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है :

(१) **बनवुन—(विवाह-गीत)**—'वनवुन' उन कश्मीरी लोक-गीतों को कहते जिन्हें स्त्रियाँ विवाह के शुभ-अवसर पर मिलकर गाती हैं।[३] कश्मीर में हिन्दू और मुसलमान दोनों रहते हैं, इन दोनों के विवाह-गीतों में पर्याप्त अन्तर है, गाने की रीति भी भिन्न-भिन्न है।

(i) **बंटि बनवुन (हिन्दू विवाह-गीत)**—विवाह हिन्दुओं का एक प्रमुख संस्कार है और काफी लम्बा है। जिस दिन विवाह के लिये काम में आने वाली लकड़ी भी घर लाई जाती है, उस दिन से सम्बन्धित गीत भी मिलते हैं। घर की लिपाई करते समय, निमन्त्रण देने सम्बन्धियों के यहाँ जाने के दिन, मँहदी रात के, दीवगुण (देवाग्नि) के, एवं लग्न के 'वनवुन' भिन्न-भिन्न हैं। जिस दिन घर की लिपाई की जाती है उस दिन कुछ स्त्रियाँ आँगन में बैठकर 'वनवुन' गाती हैं :

१ Like all literary traditions in the world, the first poetic tradi tions in Kashmiri must have been the work of illiterate persons who expressed the impulses and urges of their times in song and story before ever any such thing was recorded in writing ....Kashmir is very rich in this traditional type of poetry.' 'Keys to Kashmir', p. 164.

२ Kashmiri literature, thus has an immense wealth of folk songs.' 'Literary heritage'—Kaumudi, p. 97.

३ The oldest songs of this type are those sung and recited by Hindu and Muslim women on the occassion of marriage festivities. These are called 'vanaun' or 'Marriage songs.' 'Keys to Kashmir', p. 164.

शोकलम् कॉरिथ वंनवुन ह्योतुम्य,
शुभफल दिति म्यु मॉजि व्वानिये,
वसुदीव राजन्यव वंनवुन ह्योतुये,
शुभ फल दिनिए मॉजि शारिकॉयि।
अ़सि क‍ॅरि क‍ॅमि प्रिछिथ गोरस,
तीयि आव परमीश्वरस ख्वश।
गरनावनस जंगि कुस ओयय्
मंगलादीवि ति नन्दकिशोर ।

—'हमने शुक्लं करके गान आरम्भ किया, माता भवानी हमें शुभ फल देगी। वसुदेव राजा के घर वालों ने वनवुन आरम्भ किया। माता शारिका भवानी शुभ फल देगी। हमने पण्डित से पूछकर यह शुभ कार्य किया है, वही ईश्वर को भी पसन्द आया। तुम्हारे लिये घर लीपने के समय कौन अच्छा शगुन लेकर आया। मंगलादेवी और नन्दकिशोर आए होंगे।'

(ii) **'मुसलमान-वनवुन'**—(मुस्लिम विवाह-गीत) यह विवाह गीत सुनने में अधिक आकर्षक, लयपूर्ण तथा माधुर्यगुण युक्त होते हैं। वधू का श्रृंगार तथा स्नानादि के समय, मँहदी लगाते समय, निकहरवानी के समय, बारात आने पर, दुल्हन की विदाई के समय प्रायः वनवुन गाया जाता है। दुल्हन को मँहदी लगानी है, वह दूसरे कमरे में सोई हुई है। स्त्रियाँ गीत गा कर उसको जगाने का प्रयत्न करती हैं :

रवान्ह मॉजि कूर छम, पंनिनी कुठ्यन्यन्द्र
वंन्य कंमि होनरे वुजहनावन।

—'मेरी लाड़ली बेटी अपने कमरे में सोई पड़ी है, अब मैं किस तरकीब से उसको जगाऊँगी'।

लड़की की विदाई के समय उसके माता-पिता, सहेलियाँ और भाई-बहिन अश्रु बहाते हैं। स्त्रियाँ धैर्य एवं साहस धारण करने के लिये उनसे विनीत शब्दों में कहती हैं :

ओश मंतै हांरतौव छा़ले-छा़ले,
कांसि नै अन्द लोग् मालिनुये।

—'आँसू मत बहाइये। कोई भी लड़की सदा अपने माता-पिता के घर

नहीं रह सकती।' स्वागत के लिए दूल्हा की प्रतीक्षा की जा रही है। प्रतीक्षारत नारियाँ व्यंग्यात्मक रूप में गाती हैं :—

तंति दराव सुलि तै वंति ब्यूठ कथिनी,
यंति छिस प्यालि ह्यथ् अथिनी क्यथ्।

—'काफी समय हुआ वहाँ से निकले हुए, मार्ग में न जाने कहाँ बातें करने बैठ गया और यहाँ स्वागतार्थ लोग प्याले हाथों में लिए खड़े हैं।'

(२) 'रोफ'—रोफ में गीत तथा नृत्य का सम्मिश्रण होता है। यह नारियों का गीत है। प्रायः मुसलमान नारियाँ रमज़ान के मास में, ईद के शुभावसर पर या बसन्तागमन पर यह गीत गाती हैं। मैंने स्वयं देखा है कि गाँव में हिन्दू नारियाँ भी रोफ़ करती है। रोफ़ में प्रायः विवाहित तथा अविवाहित युवतियाँ दो पंक्तियों में आमने सामने खड़ी हो जाती हैं, एक दूसरे की भुजाएँ आपस में मिलाए हुए और एक ताल पर पाँव तथा शरीर आगे पीछे करते हुए गीत गाती हैं :—

गूरि गूरि कंरियो कंनिक्य दूरो, कंनिक्य दूरो
दिलि हिन्दि शाहज़ादि आखा लोहूरो, आखा लोहूरो,
सियुन क्या रंनियो ठूलि जंम्बूरो, ठूलि जंम्बूरो।

—ओ मेरे साजन! मेरे कान के प्रिय आभूषण! मैं तुझे गीत सुनाऊँगी। गोद में लूंगी। ओ दिल्ली के राजकुमार! तू लाहौर से होकर आया है। मैं तेरे लिये कौनसा सालन पकाऊँगी। अण्डे पकाऊँगी। मेरे कान के आभूषण!'

इन रूफ-गीतों में प्रेम भाव की प्रधानता रहती है। संयोग एवं वियोग के अनेक सुन्दर चित्र इनमें मिलते हैं।

(३) **'बाँड़-जशन'**—बाँड़[1] कश्मीरी भाषा में ग्रामीण नर्त्तकों को कहते हैं। प्रायः ये लोग मनोरंजन कराने में कुशल होते हैं। बाँड़ अपनी टोली के साथ गाँव-गाँव घूमते फिरते हैं और हर एक स्थान पर अभिनय-प्रधान गीत गाते हैं जिन्हें कश्मीरी भाषा में जशन कहते हैं। कश्मीरी नाच-गाने का प्राचीनतम रूप इन्हीं बाँड़-जशनों में सुरक्षित है। कश्मीर घाटी में विशेषकर सोपुर के आस-पास के गाँव में बाँड़ लोग काफी संख्या में रहते हैं और यहीं के बाँड़ अपनी कला के लिए प्रसिद्ध भी हैं।

[1] 'भाँड़' का ही कश्मीरी रूप है—सम्पादक।

(४) **हाँज़ि बॅति**—(हाँजियों के गीत)—ये गीत दो प्रकार के हैं, एक तो हाँजियों की स्त्रियाँ सायंकाल को वितस्ता नदी के किनारे (जहाँ पर उनकी नौकाएँ होती हैं) एकत्र होकर रूफ के रूप में गाती हैं। दूसरे प्रकार के गीत श्रम-परिहरण के लिए गाए जाते हैं। डल-झील और वितस्ता नदी में किश्तियों में काफी संख्या में लोग रहते हैं जिन्हें हाँजी कहा जाता है और कश्मीरी भाषा में 'हाँज़ि'। ये लोग किश्तियों को चलाते समय श्रमपरिहार के लिए तथा आवेश में आकर गीत गाते हैं। गीत गाते जाते हैं और आगे बढ़ते हैं। नाव की गति को तीव्र करने के लिए भी ज़ोर-ज़ोर से गीत की पंक्तियों का उच्चारण किया जाता है :

हा॑लि को मा॑लिको
शाबाश मा॑लिको
ज़ोर कॅरि मा॑लिको

—'ओ मेरे मालिक ! अल्लाह, तेरा ही सहारा है। शाबाश मेरे मालिक, ज़ोर लगाओ।'' डल-झोल में हाँजी-लोग कुछ सब्ज़ियाँ भी उगाते हैं। इन हाँजियों की स्त्रियाँ सब्ज़ियाँ बेचती हैं और साथ ही गीत भी गाती हैं। यह गीत बड़े ही हृदयाकर्षक होते हैं :

ताज़ह-ताज़ह म्यति अनिमै डलिहै
है, वुलै है, वुलैहै, वुलै है,
फूलह बांगन ति पा॑रिमिअलिह है
है, वुलै है, वुलै हैं, वुलै है

—'अरी आजाओ, शीघ्र आओ, शीघ्र आओ। मैं डल-झील से ताज़ी सब्ज़ी लाई हूँ। छोटे-छोटे बेंगन और बाहर के कद्दू लेकर आई हूँ। अरी आजाओ, शीघ्र आओ, शीघ्र आओ।'

(५) **नयन्दह ति लोननुक ग्यवुन**—(नराई करने के और फसल काटते के गीत)—इन गीतों के पीछे भी श्रम-परिहरण सिद्धान्त काम करता है। खेतों में नराई करते समय कृषक नर-नारी इकट्ठे गीत गाते हैं। प्रायः नारियाँ गीत की एक पंक्ति गाती हैं और पुरुष उसी पंक्ति को दोहराते हैं। या पहले एक व्यक्ति एक पंक्ति को गाता है और अन्य नर-नारी उसी को दोहराते हैं। प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण में उस गीत की पंक्तियाँ गूँज उठती हैं, वह दृश्य देखने योग्य होता है।

(६) लंड़ी शाह—लंड़ी शाह कश्मीरी लोक-गीतों में उल्लेखनीय है। ये पुरुषों के गीत हैं। प्रायः गाँव का कोई अशिक्षित पुरुष हँसने हँसाने के लिए तुकबन्दी करता है और लोहे का एक सुलाख हाथ में लेकर (जिसमें लोहे की छोटी-छोटी पाँच-दस कड़ियाँ होती हैं) बजाता रहता है और गीत की पंक्तियों का उच्चारण भी साथ-साथ करता है। इन गीतों की सबसे बड़ी विशेषता है—व्यंग्य की प्रधानता। इनमें राजा के प्रति, जमींदार के प्रति, हाकिमों के प्रति, प्राकृतिक आपदाओं के प्रति तथा पुलिस के अफसरों के प्रति तीव्र व्यंग्य निहित होता है। इस प्रकार अनीतियों पर प्रकाश डाला जाता है। परिस्थिति-चित्रण इन गीतों में बहुत ही सुन्दर रूप से होता है। घर-घर जाकर ये लोग गीत सुनाते हैं और इस प्रकार अपना जीवन-निर्वाह भी करते हैं। जनता के सुख-दुख, आशा-निराशा, हर्ष-विषाद सभी भावनाओं का सम्यक् चित्रण इन गीतों द्वारा किया जाता है। इन गीतों में देश की प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाओं का भी वर्णन रहता है अतः ऐतिहासिक घटना की प्रामाणिकता सिद्ध करने में, तिथि ढूँढ़ने में तथा सामाजिक स्थिति का अनुमान लगाने में ये गीत काफी सहायक सिद्ध होते हैं। निस्संदेह इन्हें हम ऐतिहासिक-स्रोतों के अन्तर्गत ले सकते हैं। अकाल, बाढ़, अशिक्षा, गरीबी, सामन्तराज्य, सन् १९४७ का कबायिली आक्रमण, लोकराज्य तथा अन्य विषयों पर इन लोगों ने सुन्दर गीत कहे हैं। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने लिखा है—'अपने बीते हुए दिनों में कश्मीर ने मीठी तथा कड़वी दोनों प्रकार की घड़ियाँ देखी हैं। इन घड़ियों का सजीव चित्रण लंड़ी-शाह लोक गीतों में मिलता है।'[1]

(७) 'ललनावुन'—(लोरी लोक-गीत)—बच्चा अपनी माँ की गोद में बैठकर अपार आनन्द का अनुभव करता है। माँ के हृदय का टुकड़ा सदा सुखी रहे—यही माँ की परमअभिलाषा होती है। बच्चे को नहाते समय, बालों में कंघी करते समय, कपड़े पहनाते समय, खिलाते समय एवं सुलाते समय माँ मीठी लोरियाँ गाती है। माँ के वात्सल्यपूर्ण हृदय से निकली हुई लोरी शिशु को परमानन्द लोक में पहुँचाती है। माँ लोरी गाकर बच्चे को सुलाने का प्रयत्न करती है। वह अपने शिशु को आशीर्वादों का कवच पहनाकर जीवन-क्षेत्र में भेजना चाहती है। वह उसकी दीर्घ आयु के लिए

[1] 'बेला फूली आधी रात, —देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ०, १३२।

ईश्वर से प्रार्थना करतो है और कभी-कभी मुन्ने को सुलाने के लिए झूला झुलाती है :

छुनथ रोन्यि मंज़्लिस, कंरै गूरि-गूर
शान्द दिमै शान्द गुण्ड् ति मखमलचि वूरि
निवह लालि जामै अरद्ह रातन
ज़ातुक ल्यूखनस भगवानन्
ज़ातकस लीखित छुंलि उमर कूर
छुंनथ रोन्यि मंज़्लिस, कंरै गूरि-गूर

—'मैं तुम्हें घण्टियों से सुसज्जित झूले में झुलाऊँगी, मखमली सिरहाना रखूँगी। मेरा छोटा मुन्ना आधी रात को जन्मा है। उसकी जन्म-कुण्डली स्वयं भगवान् ने लिखी है। जन्म-कुण्डली में उसकी दीर्घ-आयु लिखी है।'

(८) **'वचनगमा'**—एक नर्तक अपनी टोली के साथ गाता है और साथ-साथ नृत्य भी करता है। टोली में अच्छे संगीतज्ञ एवं गायक होते हैं। स्वयं नर्तक भी अच्छा गायक होता है और नृत्य के साथ-साथ वह गाता है और उसके साथी भी गाते हैं। इन लोक-गीतों में संगीत एवं नृत्य की प्रधानता होती है। यह भी कहा जा सकता है कि संगीत एवं नृत्य ही इस प्रकार के लोक-गीतों के पूरक होते हैं। कश्मीर में प्रायः उत्सवों पर बचनगमा होता है और जनता इन गीतों को सुनने के लिए विशेष रूप से उत्सुक होती है। नर्तक प्रायः सुन्दर नवयुवक होता है और विशेष प्रकार के वस्त्रधारण करके पाँव में घुँघरू बाँध कर नाचता है और नृत्य की विभिन्न भंगिमाओं का प्रदर्शन करता है। देश की प्राचीन संस्कृति की सुन्दर झलक बचनगमा के द्वारा देखने को मिलती है :

कंति फोलहम लो गुलाबो लो
वारि म्याने लो गुलाबो लो
शेरि लागत बो गुलाबो लो
कारि थंदि लो गुलाबो लो
तारि कंरिथस बो गुलाबो लो
वंति छारै बो गुलाबो लो
पंति लारै बो गुलाबो लो

—'ओ मेरे गुलाब के फूल ! तुम मेरे उपवन की शोभा हो। मैं तुम्हें

अपने शीर्ष पर चढ़ाऊँगी। तुम्हारी ग्रीवा ऊँची है। तुमने मुझे बहुत तरसा लिया। ओ मेरे चितचोर ! मैं तुम्हारी बाट जोहती रही। अब मैं तुम्हारे पीछे दौड़ूँगी।'

(६) लोलग्यवुन—(लोल-गीत)[१]—'लोल' का शब्दार्थ है—प्रेम। ये गीत प्रेममय अनुभूतियों पर ही आधारित हैं। ये गीत दो प्रकार के हैं (i) नारी द्वारा गाये जाने वाले लोल-गीत, (ii) प्रेमिका के विरह में नायक द्वारा गाये जाने वाले लोल गीत। इन गीतों का प्रधान विषय प्रेम है। वियोग के सुन्दर चित्र इन गीतों में मिलते हैं :—

कॅरि बॉलिये यावनस रोवुयो लु लु,
यि छु दुनिया नॅवि खोति नोवुये लु लु।

—ओ सखी ! अपने यौवन के गीत गा। यह संसार नित नवीन रूप धारण करता है।

और कभी प्रेमिका प्रेमी के मिलन की उत्कट-अभिलाषा के कारण विह्वल-हृदय से पुकार उठती है :

'यार गोमॅयि पोंपुरि वंते,
कोंग पोशन रोटि नालि मंते,
सु छु तंति ब्बु छंस् यंते,
बार साहिबो करना ब्बु जॉरी।'

—'मेरा प्रेमी पाँपुर के रास्ते से चला गया, पर केसर के पुष्पों ने उसे मार्ग में ही पकड़ा। वह वहाँ है और मैं यहाँ हूँ। मेरे प्रभु ! क्या मैं अब भी चीत्कार नहीं करूँगी।'

इसके अतिरिक्त 'सोंतग्यवुन' (बसन्त ऋतु के गीत), 'कथग्यवुन' (कथा-गीत), यन्द्र बॉथि (चरखा कातते समय गाये जाने वाले गीत), 'रेड़ह

[१] —'कहा जाता है कि कश्मीर का एक प्रसिद्ध सम्राट् वजीर बम्बुर अपने चचेरे भाई की पत्नी 'लोलरी' के प्रति आर्कषित हुआ था। उसे प्राप्त करने में वह असफल हुआ और अपनी निराशा में वह लोलरी के प्रति गीत गाने लगा। 'लो-लो' 'लोलो' सदा उसके होठों पर रहता था। धीरे-धीरे इस प्रकार के गीत और लोगों ने भी कहने शुरू किये और कुछ समय के पश्चात् इस प्रकार के गीत 'लोल-गीत' के नाम से प्रसिद्ध हुए।'
दे० श्री अब्दुल अहद 'आज़ाद' कृत 'कश्मीरी भाषा और काव्य'—भाग १।

वाल्यन हिन्द बाँथि' (रेढ़े चलाने वालों के गीत), 'वान' (मृत्यु समय के शोक गीत)[१] तथा 'ग्रेटि पेहान ग्यवुन' (चक्की पीसते समय गाये जाने वाले गीत) विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इन लोक-गीतों में इस देश का जीवन साकार हो उठा है।[२] इन गीतों के द्वारा देश के सांस्कृतिक उत्थान-पतन का सम्यक् ज्ञान हमें प्राप्त होता है। लोक-गीतों का वास्तविक क्षेत्र नगर के कृत्रिम एवं अशान्तवातारण से बहुत दूर है। प्रकृति के सुरम्य-स्थल, लहलहाते खेत, कल-कल करती हुई नदियाँ, प्राकृतिक झरने, श्वेताम्बर पर्वत-शृङ्खलाएँ, तथा पक्षियों के मधुर बोल लोक-मानस के प्रेरणा स्रोत रहे हैं। इन गीतों के द्वारा जन-मानस की निश्छल, स्वाभाविक, सरस एवं मधुर अभिव्यंजना हुई है।

लोक-गीत जनसमूह की अमूल्य सम्पत्ति हैं। साहित्य में इनका विशिष्ट एवं प्रौढ़ स्थान है। राष्ट्रपिता का कथन है—'सचमुच लोक गीतों में धरती गाती है, पहाड़ गाते हैं, नदियाँ गाती हैं, फसलें गाती हैं, उत्सव और मेले, ऋतुएँ और परम्पराएँ—सभी गाती हैं।'[3] कश्मीरी काव्य का आदि रूप इन्हीं लोक-गीतों में सुरक्षित है। कालान्तर में कई प्रसिद्ध कवियों एवं कवयित्रियों को इनसे प्रेरणा मिली।

---

१ कश्मीर में मृत्यु के समय भी एक विशिष्ट प्रकार के गीत गाये जाते है—**सम्पादक।**

२ 'The Folk songs of Kashmir, like those of other countries, represent and preserve myths and traditions, customs and beliefs, superstitions and prejudices. They are sung in every village-home and are handed down from generation to generation.

'Kashmir'—February 1954 p. 34.

३ 'धरती गाती है'—देवेन्द्रसत्यार्थी—आमुख

डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
रीडर, हिन्दी-विभाग, राजस्थान
विश्वविद्यालय, जयपुर

कैसा लगा

*

ऐसा लगा, न जाने कैसा लगा
रेत में बर्फीली ऊँचाइयों की फसल
सूखी, भूखी, चटकी, गंजी सतह थी
झेलमें बहने लगीं,
झीलें धीरे धीरे, हवा की ग़ज़लों पर थाप देने लगीं।
हवाई जहाजों से भी भागने से क्या फायदा ?
वजूद के पोर पोर में उतरे उस तसव्वुर को
रद्दी टिकिट की तरह फेंका नहीं जा सकता।
संभावना अगर केसर के खेत और बादाम के दरख्तों में है—
तो, आदमी में लगा कीड़ा भी
कभी रेशम उगल सकता है।
उबकाइयों में भी एक संगति होती है
—एक तर्क होता है !
हरेक छुरे वाले हाथ के करीब कहीं दिल होता है
तलाश से, चश्म, चश्मे-शाह होती है !
[हर एक काँगड़ी के पास, हर एक गली, कूचे, के कोने में]
कुछ मिला, न जाने क्या मिला !
ऐसा लगा, न जाने कैसा लगा !

(कश्मीर की एक सप्ताह की यात्रा की स्मृति में)

"परिषद् के चक्कर में"

सन्तोष ज़ारू
एम० ए० (अनुसंधित्सु)

*

"परिषद् की अगली बैठक में सन्तोष ज़ारू और अमरनाथ हमें कुछ-न-कुछ अवश्य सुनायेंगे"—डॉ० शर्मा ने कहा और हम हक्के-बक्के रह गए कि क्या सुनायेंगे। ऐसा लगा जैसे किसी ने दिसम्बर के महीने में एक बाल्टी ठंडा पानी सिर पर डाल दिया हो। बैठक की समाप्ति पर डॉ साहब से यह पूछने गए कि आखिर क्या सुनायें हम। उन्होंने कहा "जो भी तुमने लिखा हो, परन्तु मौलिक हो और ज़रा नया 'आइडिया' हो।" और यहाँ जो दिमाग़ जम सा गया था पुराने आइडियाज़ भी दुम दबाकर भाग गए थे नयों की बात ही क्या ?

घर आए और सोचने लगे कि आखिर लिखें तो क्या लिखें, पर कुछ भी समझ नहीं आया। जब मस्तिष्क ने कोओपरेट करना एकदम बन्द कर दिया तो यह विचार ही दिल से भुला दिया। सोचा "अभी बहुत समय है।" परिषद् की बैठक प्रति शनिवार होती है। अगले शनिवार को विभाग में पार्टी थी और उससे अगले शनिवार की छुट्टी थी। मन में ज़रा सन्तोष हुआ कि इतने दिनों में कुछ-न-कुछ तो अवश्य ही लिख लेंगे। वैसे तो हमार नाम ही सन्तोष है, पर मुहल्ले के भिखारी करोड़ीमल के समान, नाम के अनुसार भगवान् ने हमें सन्तोष कुछ कम ही दिया है, इसलिए जब नाम के अनुरूप थोड़ा सा भी सन्तोष हो जाता है, तब बड़ा आनन्द आता है।

रात को जब हम पलंग पर लेटे तो नींद आँखों से एकदम नदारद—जैसे परीक्षा के समय रटे हुए प्रश्नों का उत्तर। एक बजे तक करबटें बदलते रहे और रह-रह कर वह समय याद आता रहा जब कि नींद हमें किसी

प्रकार छोड़ती न थी। उन्हीं दिनों की कुछ अधिक रोचक घटनाएँ याद आ गई। एकाएक मन में विचार आया क्यों न इसी विषय पर कोई रोचक वार्त्ता लिखे ! यक़ीन मानिए उसी समह Light-on की और वार्त्ता लिखने बैठ गए। छोटे भाई 'रूप' की बिजली की रोशनी से कुछ दुश्मनी सी है, बत्ती जलने पर वह एकदम नहीं सो पाता, वह अपने पलंग पर कुनमुनाने लगा और हमसे बोला, "जीजी रात के एक बजे यह तुम क्या कर रही हो ? "to burn the mid-night oil" मुहावरा हमने भी पढ़ा है, पर उसका ऐसा दुरुपयोग हमने कभी नहीं किया।"

"इस समय मूड़ आ गया है कुछ लिखने का इसलिए छेड़ो मत, बाद में बताऊँगी।" हम नए आइडियाज़ के लेखक बने हुए थे इसलिए किंचित् गम्भीरता से उत्तर दिया। वह हमारी ज़िद एवं आदत जानता है अतः कुछ कहे बिना अपने पलंग पर करवटें बदलता रहा और फिर मफलर से आँखें बाँध कर, हमें, हमारे विभाग, हमारी परिषद् तथा उसके पदाधिकारियों को कोसता हुआ सोने का प्रयत्न करने लगा।

कोई आध-एक घण्टे में हमने वार्त्ता समाप्त की और एक बार पढ़ कर देखा तो मन ने स्वीकृति दे दी कि वार्त्ता अच्छी है। जैसे टीचर को अपना पढ़ाना हमेशा एकदम Top-class लगता है चाहे विद्यार्थियों को यह मालूम ही क्यों न पड़ गया हो कि सारा-का-सारा Lecture कपूर ब्रदर्श के यहाँ के Notes में से उड़ाया गया है। उस दिन तक हम यह नहीं समझ पाए थे कि कोई कवि या लेखक जब कुछ लिखता है तो क्यों दूसरों को सुनाने के लिए बेचैन हो उठता है। पर उस दिन हम जान गए। हुआ यह कि जब हमने दो-एक बार वार्त्ता पढ़ी तो हम 'रूप' को जगाने लगे, "हमने एक वार्त्ता लिखी है, तुम पढ़ के देखो ना कैसी है, Please देखो ना, यह भी कोई बात है—सोते ही रहोगे।" सच कहते हैं अगर वह हमसे बड़ा होता तो अवश्य ही हमें एक-दो झापड़ लगा देता कि यह भला कौन सी तुक है कि रात के दो बजे तुम्हारी वार्त्ता पढ़ूँ। पर चूँकि हमसे छोटा है अतः बोला, जीजी, सवेरे छः-सात बजे तुम्हारी वार्त्ता पढ़ूँगा, इस समय पढ़ने पर समझ में भी नहीं आयेगी। इस समय तो बिजली बन्द करके सो जाने दो जिससे कि सवेरे तुम्हारी वार्त्ता पढ़ कर दाद तो दे पाऊँ। otherwise it will be impossible, you know." यह कह कर उसने हमें बड़े ही अच्छे ढंग से बात-रूपी झापड़ लगाया ? हमने कुछ खिसिया कर बिजली बन्द कर दी।

कुछ घण्टों की नींद में हमने स्वप्न देखे कि हम वार्त्ता सुना रहे हैं, और सब ओर से हमारी प्रशंसा हो रही है। सभापति हमें शाबाशी दे रहे हैं, मेडिल मिलने की घोषणा हो रही है और हम बनावटी लज्जा के साथ खुश हो-हो कर मन-ही-मन मुस्करा रहे हैं और future reference के लिए note कर रहे हैं कि कौन कितने जोर से ताली बजा रहा है।

मंगलवार को हम यूनीवर्सिटी आए और यहाँ डॉ० साहब को वार्त्ता दिखाई, उन्होंने कहा, "हाँ ठीक है, सुना देना।" पता नहीं बड़ों को प्रशंसा करने में इतना लोभ क्यों होता है। हम तो A—one वार्त्ता लिख कर लाए और उन्होंने कह दिया "ठीक है।" इससे हमारा ४०० ग्राम नहीं तो २५० ग्राम खून तो सूख ही गया होगा।

अल्लाह-अल्लाह करके वह शुक्रवार आ गया जिसके अगले दिन हमें वार्त्ता सुनानी थी। हमने वार्त्ता अनेक बार उसी ढंग से दोहराई जिस ढंग से अगले दिन सुनाने जा रहे थे। लहज़े की, हाथों के इशारों की, अर्थ-भरी मुस्कान की, यहाँ तक कि एक खास style से पन्ने पलटने तक की रिहर्सल की।

दूसरे दिन जब परिषद् की बैठक हुई तो, ये लो, कमरे में आते-आते हमारी टाँगें ही काँपने लगीं। बार-बार मन को समझाया, "सब अपने ही हैं, डर की क्या बात है?" पर दिल, अरे उसकी कुछ मत पूछिये, वह इतनी ज़ोर से धड़क रहा था कि जितना, जब हम विभाग के सामने के पेड़ों से सेब चुराते थे, तब भी नहीं धड़का होगा। अब आप ही बताइये—हम कोई चोरी करने जा रहे थे—वार्त्ता सुनाना इज्ज़त का काम है—उससे नामवरी मिलती है, मगर; मगर ये सारी बातें दिल को समझाईं—पर वह न माना, इतनी जोर से धड़क रहा था कि हमें शक हो रहा था कि कहीं और लोग उसकी protest की आवाज़ न सुन ले। बार-बार पानी पीकर आने पर भी मुँह सूख रहा था, ज़बान तालु से चिपक जाती थी—आवाज़ रुक-रुक जाती थी—पानी से पेट भर गया, मगर मुँह सूखा का सूखा। मज़ा यह कि सर्दियों के दिन थे। हम कोट पहिने हुए थे, पर अन्दर-ही-अन्दर पसीने से भीगे हुए और हथेलियाँ हमारी सारी गीली-गीली सी हो रही थीं। हम समझे कि शायद हम बीमार हो गए हैं, नहीं तो भला एक ओर से सर्दी के मारे हमारे दाँत किटकिटा रहे थे और दूसरी ओर हम पसीने में नहाए हुए थे। मन में आया कि साथ बैठी लड़की से पूछें, "तुम्हें भी पसीना आ रहा है क्या?"

पर फिर सोचा "वह न जाने क्या समझे ?" अतः चुपचाप नीचे को सिर किए बैठे रहे।

लेकिन दिल की धड़कन, शरीर की कँपकँपी और पसीने का बहना कुछ भी कम नहीं हुआ। फिर सोचा अभी तो अमरनाथ, सुदेश इत्यादि तीन-चार विद्यार्थियों का नम्बर आएगा। पर हमारा भाग्य देखिये सुदेश की कविता पाँच-छः मिनिट में समाप्त हो गई, आजकल लोगों में creative-power कम होती जा रही है। बताइए पाँच-छः मिनिट की भी कोई कविता होती है! घण्टा-आध-घण्टा न चले वह कविता ही क्या ? और-और अन्य विद्यार्थी जिसका कि कार्यक्रम था, उपस्थित ही नही था बड़ा अक्लमंद निकला! इतने में सुनाई पड़ा "अब सन्तोष ज़ारू की रोचक वार्त्ता 'भूत-आया-भूत भागा' सुनिये।" हम मन-ही-मन अपने को समझाने में लगे हुए थे इसलिए ज्यों ही यह वाक्य सुनाई पड़ा हमें ऐसा लगा मानो पहले दिन की ठंडे पानी की बाल्टी में जो पानी बचा उसे किसी ज़ालिम ने हमारे सिर पर डाल दिया हो। लाहोल भेजिए ऐसे मज़ाक पर। फटी-फटी आँखों से सब को देखते रहे और एकाएक कठपुतली की तरह खड़े होकर निर्दिष्ट स्थान की ओर बढ़े। सीढ़ियाँ उतरते टाँगें ऐसे काँप रही थीं, जैसे अब गिरे-अब गिरे। कोढ़ मैं खाज यह कि तालियाँ बजाई जा रही थीं और तालियों की आवाज़ हमारे दिल पर हथौड़े की चोट कर रही थी। कुछ लोगों के हाथों से तालियों की आवाज़ कुछ तेज़ भी निकलती है।

अब एक हाथ कोट की जेब में डाला और एक हाथ में कॉपी रखी जिसमें लिखी वार्त्ता हम सुनाने जा रहे थे। हमने पढ़ना शुरू किया, "....नींद...नींद...और नींद, क्या नींद के सिवा.........." यहाँ हमने अपना जेब वाल हाथ बाहर निकाला और copy वाला हाथ जेब के हवाले किया। लगता था जैसे हमारे दस-बीस हाथ हों—किसे कहाँ रखें समझ में नहीं आता था। हम वार्त्ता सुनाते हुए हाथों के स्थानों को बदलते रहे। हर बार adjust करते मगर लगता अभी आठ-दस हाथ और रह गए हैं सम्भाल कर रखने के लिए। अपनी आवाज़ हमें भी कुछ अजीब लग रही थी, मानो कोई और कहीं और से बोल रहा हो। हम पढ़ते जा रहे थे, "हमारी हिमाक़त देखिए कि फिर झपकी आ गई,"—यहाँ गला खँखारा—"आप जानें कि ....उन दिनों हम इतने बड़े"....फिर गला साफ किया, फिर हाथों की जगह बदली एक पैर से दूसरे पैर पर खड़े हुए। फिर सोचा बार-बार गला खँखा-

रना कितना बुरा लग रहा है अतः अब सीधे-सीधे बोलेंगे। पर पाँच-छः वाक्य इस सहारे के बिना बोले तो लगा हमारे नथुने फड़कने लगे हैं और हमारी आवाज़ बुरी तरह काँपने लगी है। इसलिए इसका सहारा लेना पड़ा। हम आगे बढ़ते जा रहे थे,........"उस रात घड़ी में सात बजे...." "अरे सन्तोष, तुम्हारी आवाज़ भारी क्यों हो रही है, आवाज़ को सम्भालो।" डॉ० भूषणलाल कौल की आवाज़ सुनाई दी और हम एकदम चुप हो गए, जैसे radio का स्विच off हो जाए। आवाज़ सम्भलने के बदले ख़त्म हो गई मुँह चल रहा था—किन्तु आवाज़ नहीं निकल रही थी। डॉ० शर्मा ने कहा, "सन्तोष चुप क्यों हो गई" तब हमें मालूम पड़ा कि हमारा मुँह तो चल रहा है—मगर आवाज़ नहीं सुनाई पड़ रही! जैसे बोझा उठाते हैं—वैसे ही धकेल कर आवाज़ को ऊपर भेजना आरम्भ किया। हे भगवान! वार्त्ता के अन्त तक आते-आते हमने यह मिन्नत मान ली कि आज सही सलामत घर पहुँच जाऊँ तो अगली अष्ठमी को खीरभवानी जाकर पूजा करूँगी।

ज्यों ही हमने वार्त्ता समाप्त की, हमने यूँ रुकी हुई साँस छोड़ी मानो गाय किसी कसाई के हाथ से रस्सा तुड़ा कर भागी हो। आप ग़लत मतलब न लगाएँ—हमारा मतलब सभापति से नहीं है—वे तो अपना फर्ज़ पूरा कर रहे थे। वार्त्ता की समाप्ति पर एक बार फिर से तालियाँ बजीं, और न जाने क्यों उनकी आवाज़ ने हथौड़े का काम नहीं किया। इस वार्त्ता पर जब किसी ने कुछ नहीं कहा तो हम समझ गए कि हमारी वार्त्ता अच्छी नहीं थी। ऐसे ही अपने मन में इतने दिनों से प्रसन्न हो रहे थे कि हमारी वार्त्ता बहुत अच्छी नहीं तो भी अच्छी अवश्य ही है। वैसे बाद में जब डॉ० शकीलुर-रहमान ने कहा वार्त्ता अच्छी लिखी हुई थी तब मन को थोड़ी बहुत शांति मिली।

देखा आपने यह थी हमारी पहली वार्त्ता, इसके बाद कुछ और वार्त्ताएँ भी सुनाईं लेकिन जैसी दशा हमारी उस दिन हुई थी, वैसी कभी नहीं हुई। पहले दिन की इस हालत के वर्णन पर आप हँसेंगे अवश्य किन्तु पहले दिन हिन्दी-परिषद् में कुछ सुनाना सूली पर चढ़ने से कम नहीं है। अगर नहीं मानते तो सुना के देखिए—सब आटे दाल का भाव मालूम हो जाएगा! जी हाँ, हमारे हाल पर सम्भल कर हँसियेगा! हम तो अब भी यही मनाते हैं कि कब हमारी research ख़तम हो और कब इस परिषद् की बीमारी से छुट्टी मिले।

धन्यवाद!

विजयमोहिनी कौल
एम० ए० (उत्तरार्द्ध)

'क्यों'

※

शून्य धुँधलका
बादलों की अभेद्य दीवार
सनसनाती हवा के थपेड़े
रिमझिम की फुहारों को चीरती-फाड़ती
वे कराहती पुकारें
दिल के तारों को हिलाकर
खामोश हो गईं।
पर तभी
हल्की हल्की बर्फ से आवृत्त पहाड़ियों से
नगीन झील के उद्वेलित स्पन्दित वक्षःस्थल से
युगों से मौन, स्थिर खड़े चिनारों से
जाने कहाँ से
पुनः लौट कर
टकरायी, और
वातावरण में
गूँजती; और गूँजती ही रही।
कैसी है यह आवाज!
किस भयावह आकृति के काले साये
मुझे जकड़े जा रहे हैं,
किसकी फुफकारें

मुझे दबोचने की चाह में
बढ़ती चली आ रही हैं ?

× × ×

यह कैसी घुटन है
दम घुटता जा रहा है
यह तो रेंगते कीड़ों की सरसराहट है
गन्दी नालियों में पले
घिनौने रेंगते कीड़े
जहाँ तक दृष्टि जाती है
और जिधर भी दृष्टि जाती है
कतारों की कतार, सरसराती, फुफकारती
भयंकर गति से बढ़ती ही चली आती है
इन सूनी खामोश, तन्हा घड़ियों में
दिशाओं को ध्वनि प्रतिध्वनित करती
हाहाकार करतीं
मन को झकझोरने वालीं
दिल के खामोश तारों को झनझनाने वालीं
ये चीखें, ये दर्द भरी पुकारें,
उभरती, लपकती, लपलपाती
झुलसी मान्यताओं के जिस्मों की सड़ाँध
जलते दिलों की बनती राख की ढेरियों से
निकलते ये धुओं के बादल,
कालिमा के घने आंचल से
ढकता जा रहा यह वातावरण।
यह मेरी देव-भूमि,
स्वर्ग को जिससे ईर्ष्या होती थी
आज मुझे नारकीय यंत्रणा की शृंखलाओं में
जकड़ जकड़ देती है।
क्या हो गया है यह—क्यों हो गया है यह ?

कश्मीरी भाषा के शब्द-वातायन से

त्रिलोकीनाथ गंजू
एम. ए., बी. एड. (अनुसंधित्सु)

*

कश्मीरी भाषा के शब्द-वातायन के इस स्तंभ में हम इस बात का प्रयास करते हैं कि कश्मीरी भाषा के शब्द-समूह से निरन्तर कुछ शब्द पाठकों के सामने रखकर उन्हें इस बात का उन्मुक्त—अवकाश दें कि वे जार्ज ग्रियर्सन की स्थापित इस मान्यता पर कि कश्मीरी भाषा दरद गोत्रजा है, विचार करें। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि स्वयं ग्रियर्सन कहाँ तक इस भाषा के प्रवीण विद्वान् थे। यहाँ भी गतांक की तरह संज्ञा एवं धातु का विवरण देते हैं जो कश्मीरी भाषा-भाषी हिन्दू और मुसलमान अनायास अपने रोजमर्रा के जीवन में प्रयोग करते हैं। अब समय आ गया है जब कि हमें कश्मीरी भाषा को संस्कृत की एक स्वतंत्र अपभ्रंश के रूप में स्वीकार करना होगा। इस परिप्रेक्ष्य में इसका अनुसंधान बहुत आवश्यक है।

संज्ञाएँ

कश्मीरी	**संस्कृत**	**हिन्दी**
क० पअ्ठ	सं० पुष्ठ	हि० पुष्ठ
क० व्यअ्ठ	सं० विष्ठ	हि० मोटा
क० हुंगन्य	सं० हनु	हि० ठुड्डी
क० दअश	सं० दशी	हि० कपड़े की धजीर
क० चोअर	(वैदिक) चरु [१]	हि० चूल्हा
क० वअ्थ	सं० पथ	हि० रास्ता

१ वदिक कर्मों में 'चरु' की बड़ी महता है।

क० शाल	(वै०) शामूल[1]	हि० शाल
क० वावपट	सं० वायुपट	हि० खलिहान में अनाज 'बरसामन' के लिए वायु के उत्पन्न करने का वस्त्र।
क० नभ	सं० नभ	हि० नभ (आकाश)
क० जिह्‌व	सं० जिह्वा	हि० जीभ

धातु :

क० मुअ्ण्ड; धातु :—"मुण्डि खण्डनम्" मुण्ड धातु खण्ड (न) के प्रति है, "मुण्डति"। हि० विधवा।

क० दद्राय; धातु :—"द्रम गतौ" द्रम धातु गति के प्रति है, "दद्राम"। हि० बहना।

क० फक् (ख्) धातु :—"फक्व नीचगतौ" फक्व धातु निम्न गति पर है, "फक्वति"। (आमाशय का वात निर्गमन।

क० कअ्ल; धातु :–"कल अव्यक्ते शब्दे" कल धातु अव्यक्त शब्द के प्रति है, "कल्लते"। हि० गूँगा।

क० फुल्लय; धातु :—"फुल्ल विकसने" फुल्ल धातु विकास के प्रति है, "फुल्लति"। हि० प्रफुल्लय अथवा पुष्पित।

क० अव्; धातु :—"अव श्रवणे" अव धातु सुनने के प्रति है। हि० सुनना।

क० आव; धातु :—"अव प्रवेशे", अव धातु प्रवेश के प्रति है। हि० घुसना।

क० पोशुन; धातु :—"पूष वृद्धौ", पूष धातु प्रवृद्धि के प्रति है। हि० बढ़ती या प्रवृद्धि।

[1] वैदिक भाषा में ऊँनी वस्त्र-विशेष को कहते है। मध्य व्यंजन लोप के कारण शाल ही शेष रहा

[पिछले अंक में लेखक ने कश्मीरी शब्द 'पाम्पोश' (कमल) को संस्कृत के 'पंक पुष्प' से व्युत्पन्न बताया था, हमारा मत है कि वह 'पद्मपुष्प' से बना है; जैसे 'पद्मपुर' से 'पाम्पुर'। इस विषय में पाठकों के मत का स्वागत किया जायगा।

—सम्पादक]

सम्मतियाँ

++

भारत सरकार
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली
का स्थायी आयोग
(शिक्षा मंत्रालय)
७, पश्चिमी ब्लाक, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली– २२। दिसम्बर २०, १९६८

डॉ० बाबूराम सक्सेना
अध्यक्ष

प्रियवर,

"वितस्ता" पत्रिका मिली। देखकर चित्त प्रसन्न हुआ। आपके प्रयास की उत्तरोत्तर सफनता के लिये हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ हैं।

आपका
डॉ० बाबूराम सक्सेना

डॉ० रमेशकुमार शर्मा,
सम्पादक, 'वितस्ता'
जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय (कश्मीर-मंडल),
श्रीनगर।

आगरा
३०-१-६९

प्रिय बंधु डॉ० शर्माजी,

'वितस्ता' का ग्रीष्म अंक (१९६८) प्राप्त हुआ। इस अंक की सामग्री में विविधता है और उसका साहित्यिक स्तर काफी ऊँचा है। विशेष रूप से, विद्यार्थियों की लेखन-वृत्ति को प्रोत्साहित करने का आपका ध्येय प्रशंसनीय है। ऐसी सुन्दर तथा उपयोगी पत्रिका के प्रकाशन के लिए आपको तथा आपके सहयोगियों को हार्दिक बधाइयाँ।

आपका
वि० कृष्णस्वामि अय्यंगार
रीडर, केंद्रीय हिंदी-संस्थान, आगरा

University of Jammu & Kashmir

Dr. J. N. Bhan
Vice-Chancellor

AMARSINGH BAGH
SRINAGAR
KASHMIR

Dated Oct. 17, 68.

My dear Dr. Sharma,

I thank you very much for sending me a copy of the latest issue of the Vitasta. I feel happy to note that the Hindi Department is bringing out a journal which is indeed of a high quality expected from the post-graduate students. You have done well in bringing to the notice of the readers the literary contributions made in Kashmir and Dogri through the medium of Hindi.

This could probably be extended to the Urdu and other langages also with which we are familiar in Northern India. If that could be done, the isolation of Hindi from the total social and literary millieu could be easily broken and lot of criticism about the trend in the development of Hindi language and literature avoided.

I would also suggest that the standard English expressions for 'Post-graduate', 'Previous' 'Final', 'Department' 'University' and so on may continue to be used in brackets alongwith their corresponding terms coined in Hindi. This will help non-Hindi people.

I again congratulate you on publishing a good journal and wish you all success in the years to come.

With Kind regard.

Yours Sincerely
J. N. Bhan

Dr. R. K. Sharma
Head of the P. G. Dept.
of Hindi
J. & K. University,
Kashmir Division,
Srinagar.

['वितस्ता' में सर्वप्रचलित (तथा सर्वमान्य) पारिभाषिक शब्दों का ही प्रयोग किया जाता है—सम्पादक]

राजनाथ शर्मा एम० ए० **लक्ष्मी-निवास**
गोकुलपुरा
आगरा–२

प्रिय रमेश भाई, दि० १२-२-६९

शुभ कामनाओं सहित प्रेषित 'वितस्ता' मिली। पढ़ी। बहुत अच्छी लगी। इसका पिछला अंक भी पढ़ा था। उसे देखते हुए यह नया अंक प्रगति का एक मजबूत आगे बढ़ा हुआ चरण ही माना जायेगा। इस पत्रिका का शीर्षक अपने विषय और रूप को पूरी तरह से सार्थक करता है। इसमें कश्मीर की वितस्ता की उर्मियों का सुमधुर कल्लोल भी है और उसके तल में व्याप्त गहराई भी। यह कश्मीर की नवोदित और प्रौढ़—दोनों ही स्तर की प्रतिभाओं का पावन संगम है। यह समस्त जम्मू-कश्मीर प्रदेश के लोक-मानस का सफल प्रतिनिधित्व करती है। आपने लद्दाखी और डोगरी भाषाओं के लोक-रूप प्रदर्शित कर हिन्दी-भाषियों पर बहुत उपकार किया है। ऐसे शुभ प्रयत्न देश की भावात्मक एकता को दृढ़ करने में, विभिन्न प्रदेशों की लोक-संस्कृतियों, विचारों आदि के पारस्परिक विनिमय का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

हम हिन्दी-भाषी प्रायः कश्मीर के सम्बन्ध में बहुत कम जानते हैं। वह सामान्य जन के लिए एक सुन्दर परी-लोक ही है। 'विस्तता' हमारे उस भ्रम को दूर कर उस प्रदेश के जन-जीवन, चिन्तन की सहजता और उसके मूल में स्थित वहाँ का नैसर्गिक सौन्दर्य—सभी की एक सुरम्य झलक दिखा देती है। साहित्य द्वारा लोक-मानस का सच्चा प्रतिनिधित्व यही कहलाता है। इसमें कश्मीर के प्राचीन और नवीन-दोनों प्रकार के साहित्य का आंशिक परिचय भी मिल जाता है जो एक लम्बी परम्परा की लुप्तसी कड़ियों को जोड़ वहाँ की परम्परा का एक सुनिश्चित रूप स्पष्ट कर देता है। 'वितस्ता' में संग्रहीत विभिन्न प्रकार की रचनाओं को पढ़ कर यह सन्तोष हुआ कि जम्मू-कश्मीर भी नवीन साहित्यिक चेतना से अछूता नहीं है। यह प्रदेश भी समय की तीव्र गति के साथ अपने चरण विकास-पथ पर आगे बढ़ा रहा है।

मुझे आशा है कि 'वितस्ता' भविष्य में भी अपने प्रदेश की जन-चेतना का इसी प्रकार प्रतिनिधित्व करती रहेगी। अभी उसे अधिक गम्भीर रूप देने का प्रयत्न न करें। इसमें आपके छात्र-छात्राओं का जितना अधिक योग रहेगा, यह उतनी ही अधिक सफल और यथार्थ बनेगी। नई पीढ़ी ही लोक-मानस का यथार्थ रूप प्रस्तुत करने में समर्थ होती है क्योंकि उसमें सहजता और स्वाभाविकता रहती है।

अपने इस शुभ प्रयत्न के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ स्वीकार करें। आपके सभी सहयोगी मेरी हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

आपका
राजनाथ

जम्मू-काश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर के हिन्दी-परिषद् की मुख-पत्रिका 'वितस्ता' जो डॉ० रमेशकुमार शर्मा के संपादकत्त्व में प्रकाशित हुई है, मुझे बड़ी आकर्षक प्रतीत हुई। पत्रिका में 'चयन-दृष्टि' बड़ी तीव्र एवं सूक्ष्म है। अनेक विधाओं की व्यवस्था ने इस पत्रिका में प्राण फूंक दिये हैं। प्रादेशिक-बोली की कविताओं ने हिन्दी-व्याख्याओं के साथ जो साहित्यिक रंग धारण किया है, वह न केवल सम्पादक की सुरुचि का परिचायक है अपितु कलात्मक मनीषा का सहज प्रमाण भी है। लेखों में प्रकृति के स्थूल वर्णनों से लेकर दार्शनिकमी मांसाओं तक का विनियोग है। भाषा-परिमार्जन के ध्यान ने पत्रिका के भाव-कलेवर को सौन्दर्य देकर उसकी साहित्यिकता को गौरव प्रदान किया है।

मैं साहित्य-जगत् में ऐसी पत्रिकाओं का हृदय से अभिनंदन करता हूँ और योग्य सम्पादक को इस पत्रिका के सम्बन्ध में अपने प्रभूत साधुवाद अर्पित करता हुआ इसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ कि चौथे वर्ष का प्रथम खण्डअपनी प्रस्तुत भूमिका को निरन्तर गौरवान्वित करता रहेगा।

डॉ० सरनाम सिंह शर्मा 'अरुण'
आचार्य, हिन्दी-विभाग,
राजस्थान-विश्वविद्यालय, जयपुर।

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
तिरुपति (आ० प्र०)
दिनांक २७-१२-१९६८
डॉ० विजयपाल सिंह
एम. ए. (हिन्दी) एम.ए. (संस्कृत), पी-एच. डी., डी. लिट्.

डॉ० रमेशकुमार शर्मा
एम. ए. पीएच. डी.
अध्यक्ष-हिन्दी विभाग
का० वि० वि० काश्मीर

बन्धुवर डॉ० शर्माजी,

'वितस्ता' का ग्रीष्म-अंक मिला। अनेकानेक धन्यवाद। बड़ी रुचि के साथ आद्योपान्त पढ़ गया। ऐसा लगता है कि आपने अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्त में हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार का व्रत ले लिया है। यह उचित भी है। जब विदेशी हजारों मीलों से आकर यहाँ अपनी भाषा का प्रचार एवं प्रसार करते हैं तो हम अपने देश में भी नहीं कर सकते ? आपका अध्यवसाय एवं त्याग अनुकरणीय है।

इस अंक से स्पष्ट है कि आपके छात्र एवं छात्राओं में हिन्दी के लिए अगाध प्रेम ही नहीं अपितु अत्यन्त उत्साह भी है। कई रचनाएँ बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं।

आपकी 'स्वाद' नामक कविता में मुझे भी बहुत स्वाद आया। इतनी सुन्दर एवं उपयोगी पत्रिका के लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए।

आशा है, आप सानन्द हैं।

भवदीय
डॉ० विजयपाल सिंह
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर (राजस्थान)

प्रिय डॉ० शर्मा,

'वितस्ता' का ग्रीष्म अंक मिला। नादिम की कश्मीरी कविता से शुरूआत रुची। "ईश्वर जाने इनको किसकी नज़र लग गई है—दय-ज़ानि यिमन लज्यु क्याज़ि नज़र"—यही प्रश्न सारे माहौल में गूंज रहा है। कश्मीरी की "ज़कार" बहुत प्रिय है।

दुर्जय छेवांग द्वारा लद्दाख को इधर प्रत्येक अंक में भेजते रहिए। वह लद्दाख़ी में अपनी नवीन चेतना के गीत भी लिख सकते हैं।

कृपया डोगरी का वह गीत प्रकाशित करें, जिसे हिन्दी-विभाग के उत्सव में बालिकाओं ने गाया था।

इस अंक की कविताओं में मुहावरा पहले से अधिक नवीन है। बसन्ती जाला, शामा सेठी, रामदत्त शर्मा की कविताएँ संभावनापूर्ण हैं। "स्वाद" में व्यक्तित्त्व की सच्चाई है और सच्चाई का असर होता है।

कहानियों पर और अधिक ध्यान देना चाहिए। 'रूपभवानी' और 'आज़ाद' पर जानकारी से भरे लेख अच्छे हैं।

अब कुछ रचनाएँ 'इधर' की और कुछ विदेशी रचनाओं के अनुवाद जा सकते हैं। मसलन् 'लाइफ़' में प्रकाशित नयी पीढ़ी : पुरानी पीढ़ी का संवाद।

क्योंकि आप अनेक विदेशी-पत्रिकाओं के भी गंभीर अध्येता हैं, इसलिए हम चाहेंगे कि आप समकालीन सृजन पर अपने विचार प्रकट किया करें—

वितस्ता में जल और बल बढ़े—यह कामना है—

भवदीय
विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
रीडर, हिन्दी-विभाग

Srinagar
Dated 26-11-68

Dear Prof. Sharma jee,

Namaste.

Thanks for a copy of 'the Vitasta' It was interesting to read it.

The Vitasta echoes the new spirit of Hindi literature that is freeing itself from the traditional mystical & devotional pose & context. The contributions of the members of the staff, as of the students seem to handle the social issues, expressing indignation against social inequality.

Kashmiris have given 'Saivism', a philoshphy to the world. But, how sad, that glorious past is hidden behind the mists of the differences in scripts & groups. Our poetry & Lyrics are a fusion of Sanskrit & Parsian themes, techniques & motifs. Hindi literature too represents this synthesis.

The National language will strengthen & maintain the basic unity & integrity of Indian civilization, which transcends the diversities of race, language or the manners of writings of her different regions. Hindi can interpret this civilization against the background of out past, more than regional languages.

I am sure, your efforts in bringing out the Vitasta will culminate in seeking out a way to make Devanagri Script for Kashmiri language a bridge to create a perpetually lasting integration of thoughts & emotions between the people of this non-Hindi Speaking region and the millions of Hindi Speaking people of Bharat.

Good work is its own reward. I wish you God-Speed in your valuable labours.

With kindest regards.

Yours Sincerely
(J. N. Kachru)

हिन्दी-परिषद्

१९६७-६८ की गतिविधियाँ

++

अगस्त १९६७-६८ में इस सत्र की हिन्दी-परिषद् का गठन किया गया। संरक्षक, अध्यक्ष, सभापति, उपसभापति, अनुसंधित्सु प्रतिनिधि, मंत्री, उपमंत्री, उपमंत्री (संस्कृतिक कार्यक्रम) एवं कोषाध्यक्ष इस परिषद् के पदाधिकारी माने गए। एम० ए० उत्तरार्द्ध एवं पूर्वार्द्ध के विद्यार्थी, अनुसंधित्सु तथा प्राध्यापकगण परिषद् के सदस्य रखे गए। १९६७-६८ के लिए परिषद् के पदाधिकारी इस प्रकार हुए :

संरक्षक : प्रदेश के राज्यपाल एवं विश्वविद्यालय के कुलपति परमश्रेष्ठ श्री भगवान सहाय (पदेन)

अध्यक्ष : उपकुलपति डॉ० जानकीनाथ भान (पदेन)
उपाध्यक्ष : सहउपकुलपति श्री मि० म० बेग (पदेन)
सभापति : विभागाध्यक्ष डॉ० रमेशकुमार शर्मा (पदेन)
उपसभापति : डॉ० भूषणलाल कौल—विभाग के प्राध्यापक (पदेन)
अनुसंधित्सु प्रतिनिधि : श्री अमरनाथ शाँति।
मंत्री : कुमारी नीना कौल एम० ए० (उत्तरार्द्ध)
उपमंत्री : श्रीमती चुन्नी हांडू एम० ए० (पूर्वार्द्ध)
उपमंत्री (सांस्कृतिक कार्यक्रम): कुमारी फूल बामज़ई एम० ए० (उत्तरार्द्ध)
कोषाध्यक्ष : श्री अशोककुमार मल्ला एम० ए० (पूर्वार्द्ध)

इस प्रकार पदेन एवं निर्वाचित पदाधिकारियों को मिलाकर परिषद् की कार्य-कारिणी का गठन किया गया। यह भी निश्चित किया गया कि परिषद् की सामान्य बैठक प्रति शनिवार हुआ करेगी, तथा माह में एक बैठक सांस्कृतिक कार्य-क्रम की भी हुआ करेगी। इस निर्णय के अनुसार परिषद् की कुल २७ सामान्य एवं बिशेष बैठकें हुईं।

प्रथम बैठक २३ अगस्त १९६७ को सभापति डॉ० रमेशकुमार शर्मा के सभापतित्त्व में हुई। इसमें परिषद् केउद्‌देश्यों एवं गठन के विषय में विद्यार्थियों को अवगत कराया गया।

इसके पश्चात् जो मुख्य-मुख्य बैठकें परिषद् के तत्त्वाधान में संयोजित हुईं, उनका यथाक्रम विवरण इस प्रकार है :

दिनांक ९-१२-६७ को परिषद् की सातवीं बैठक में अध्यक्ष श्री मि० म० बेग पधारे तथा उस दिन उन सदस्यों को चुना गया जो विश्वविद्यालय के विभिन्न खेलों, नाटकों इत्यादि में भाग ले सकें।

दिनांक १२-१२-६७ के परिषद् की आठवीं विशेष बैठक आगरा कॉलेज के हिन्दी विभाग के सह-आचार्य डॉ० ओंकारप्रसाद माहेश्वरी के सम्मान में हुई। सभापति ने डॉ० माहेश्वरी का हिन्दी-परिषद् के पदाधिकारियों से परिचय कराया।

दिनांक १५-१२-६७ को परिषद् की नवीं विशेष बैठक कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ० शशिभूषण सिंघल के सम्मान में हुई। डॉ० सिंघल ने 'रस' के सम्बन्ध में भाषण दिया तथा साथ-ही-साथ'काल-बोध' एवं 'भाव-बोध' के विषय में विद्यार्थियों को बताया।

दिनांक २१-१२-६७ को परिषद की दसवीं विशेष बैठक हुई जिसमें जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री टि० मे० अड़वानी के स्वर्गवास पर शोक प्रकट किया गया। परिषद् की ओर से सहानुभूति एवं शोक का प्रस्ताव पारित किया गया, जो दिवंगत आत्मा के परिवार को भेजा गया।

दिनांक ३०-३-६८ को परिषद् की बारहवीं बैठक में यह निर्णय किया गया कि परिषद में एक सहायता-कोष बनाया जाय जिसमें से उन विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता दी जाय जो शुल्क देने में असमर्थ हों या जो अपनी पुस्तकें न खरीद पायें। इसके साथ ही परिषद् का एक पुस्तक-कोष आरम्भ करने का निर्णय किया गया। पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के विद्यार्थियों की निबन्ध-प्रतियोगिता के आयोजन का भी निर्णय किया गया।

इसी बैठक में हिन्दी के तीन बड़े साहित्यकारों—पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी तथा पं० हरिशंकर शर्मा के देहावसान पर शोक-प्रस्ताव पारित किये गये।

दिनांक २६-४-६८ को परिषद् की एक विशेष बैठक हुई। उत्तरार्द्ध की कुमारी बीणा चन्ना की माता जी के असामयिक निधन पर उपस्थित सदस्यों ने हार्दिक शोक की भावना अभिव्यक्त की तथा एक शोक-प्रस्ताव पारित किया गया तथा संतप्त परिवार को भेजा गया।

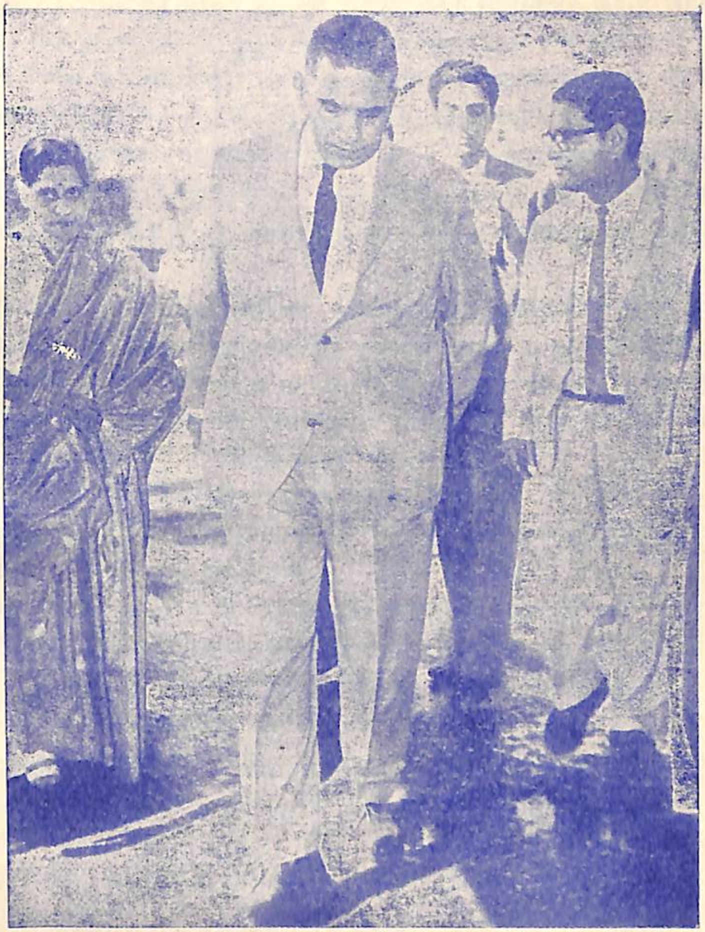

१९६८ की परिषद् के समापन समारोह का सभापतित्त्व करने के लिये आते हुए राज्यपाल परमश्रेष्ठ श्री भगवानसहाय। साथ में उनकी धर्मपत्नी तथा विभागाध्यक्ष डॉ० शर्मा।

दिनांक २७-५-६८ को परिषद् की एक विशेष बैठक स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू की चौथी वर्षी के अवसर पर हुई। इस बैठक में विद्यार्थियों एवं अध्यापकों ने पंडित नेहरू के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की।

दिनांक १५-६-६८ को परिषद् की एक विशेष बैठक पुरातत्त्व एवं इतिहास के विद्वान् डॉ० भगवतशरण उपाध्याय के सम्मान में हुई। डॉ० उपाध्याय ने साहित्य संगीत एवं कला के विषय में अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने कहा कि साहित्य संगीत तथा कला परस्पर जुड़े हुए हैं, परन्तु एक दूसरे के निकट होते हुए भी वे एक दूसरे से भिन्न हैं।

दिनांक ५-७-६८ को हिन्दी परिषद् की एक और विशेष बैठक हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार, इतिहास-लेखक एवं कवि डॉ० रामकुमार वर्मा के सम्मान में हुई। उन्होंने अपने भाषण में कहा कि साहित्य तो निरन्तर आगे बढ़ता है अतः लेखक जो कुछ लिखें उसमें अवश्य ऐसी बात कहें जिससे हमारे साहित्य एवं जीवन की प्रगति में कुछ सहायता मिले। डॉ० वर्मा ने कविता-पाठ भी किया।

दिनांक ३१-८-६८ को हिन्दी-परिषद् की सत्ताईसवीं बैठक में गान्धी-तत्त्व-निधि के श्री सुरेन्द्रदत्त भट्ट ने गान्धी-शताब्दी-समारोह पर प्रकाश डालते हुए 'तरुण शांति सेना' के कार्यों के विषय में भी बताया।

परिषद् की इन बैठकों में हिन्दी-विभाग के विद्यार्थियों एवं शिक्षकों ने भी अपनी रचनाएँ सुनाई। समय-समय पर सभापति एवं उपसभापति तथा अन्य बाह्य साहित्यकारों ने भी अपनी रचनाएँ सुना कर विद्यार्थियों को उत्साहित किया।

इस वर्ष विद्यार्थियों द्वारा १६ कहानियाँ, २३ कविताएँ, ५ लेख, ४ गद्यकाव्य तथा एक रोचक वार्त्ता सुनाई गईं। ये सभी मौलिक रचनाएँ थीं तथा इनमें से कुछ रचनाओं की प्रशंसा भी की गई। सर्वश्रेष्ठ रचनाओं पर पारितोषिक दी जाने की घोषणा की गई। साथ ही इन्हें विभागीय पत्रिका "वितस्ता" में स्थान दिया गया।

परिषद् ने जिन उद्देश्यों का ज्ञापन आरम्भ में किया था, लगभग सभी में उसे सफलता प्राप्त हुई।

इस वर्ष निम्नलिखित विद्यार्थियों को पारितोषिक तथा पदक दिये जाने की घोषणा की गई। और उन्हें परिषद् केसमापन-समारोह में दिये जाने का निर्णय किया गया :

१ पंडित जगन्नाथ तिवारी स्वर्ण-पदक :

कुमारी फूलकुमारी मौजा को सन् १९६७ में जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय की हिन्दी एम० ए० की परीक्षा में जम्मू तथा कश्मीर दोनों मण्डलों में प्रथम आने के हेतु।

२ रौप्य पदक :

निम्नलिखित विद्यार्थियों को परिषद् की बैठकों में उनके द्वारा सुनाई गई

उन्ही की साहित्यिक कृतियों तथा परिषद् की पत्रिका "वितस्ता" में छपी इन कृतियों के हेतु साहित्य-पदक :

१—श्री मोहन लाल बाबू (अनुसंधित्सु)
२—कुमारी नीना कौल एम० ए० (उत्तरार्द्ध)
३—कुमारी वीणा डुल्लू ,, (,,)
४—कुमारी बसन्ती रैणा ,, (,,)
५—श्री शशिशेखर तोशखानी ,, (,,)
६—कुमारी विजय मोहिनी कौल एम० ए० (पूर्वार्द्ध)
७—कुमारी बसन्ती जाला ,, (,,)
८—कुमारी बिमला मिस्त्री ,, (,,)
९—श्री अशोककुमार मल्ला ,, (,,)

३ निम्नलिखित विद्यार्थियों को परिषद् के पदाधिकारी नियुक्त होने के हेतु एवं परिषद् की गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने के हेतु प्रमाण-पत्र :

(१) कुमारी नीना कौल एम० ए०(उत्तरार्द्ध)-मंत्री ।
(२) श्रीमती चुन्नी हाण्डू एम० ए० (पूर्वार्द्ध)—उपमंत्री ।
(३) कुमारी फूल बामज़ई एम० ए० (उत्तरार्द्ध)—उपमंत्री सांस्कृतिक कार्यक्रम ।
(४) श्री अशोककुमार मल्ला एम० ए० (पूर्वार्द्ध)—कोषाध्यक्ष ।
(५) श्री अमरनाथ शांति एम० ए० अनुसंधित्सु-प्रतिनिधि ।

४ निम्नलिखित विद्यार्थियों को विभाग की पत्रिका में छपी उनकी कृतियों एवं समय समय पर परिषद् की गोष्ठियों में सुनाई गई उसकी रचनाओं के लिए पुस्तकें पारितोषिक रूप में दी गई :

(१) सुश्री सन्तोष जारू एम० ए० (अनुसंधित्सु)
(२) कुमारी नीना कौल एम० ए० (उत्तरार्द्ध)
(३) कुमारी वीणा डुल्लू ,, ,,
(४) कुमारी फूल बामज़ई ,, ,,
(५) कुमारी बसन्ती रैणा ,, ,,
(६) कुमारी सरला कुमारी ,, ,,
(७) श्री शशिशेखर तोषखानी ,, ,,
(८) श्री त्रिलोकीनाथ गंजू ,, ,,
(९) श्री दुर्जेय छेवांग ,, ,,
(१०) कुमारी वीणा चन्ना ,, ,,
(११) कुमारी दिद्दाजी तिक्कू एम० ए० (पूर्वार्द्ध)
(१२) श्रीमती चुन्नी हाण्डू ,, ,,

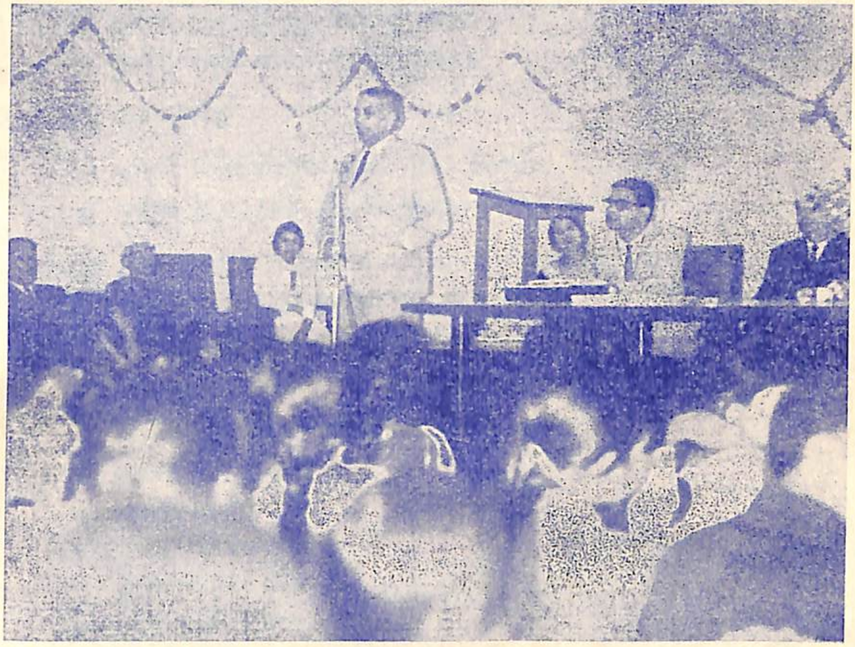

१९६८ की परिषद् के समापन समारोह में बोलते हुए राज्यपाल परमश्रेष्ठ श्री भगवानसहाय। बैठे हैं: कुमारी बामज़ई (उपमंत्री सां० का०) मंत्री नीना कौल, विभागाध्यक्ष डॉ शर्मा तथा उपकुलपति डॉ० भान

(१३) श्री अशोककुमार मल्ला ,, ,,
(१४) श्री भूषणलाल कौल ,, ,,

५ निम्नलिखित विद्यार्थियों को निबन्ध-प्रतियोगिता में प्रथम एवं द्वितीय आने पर पुस्तकों के रूप में पुरस्कार प्रदान किये गए :

एम० ए० उत्तरार्द्ध

(१) कुमारी वीणा डुल्लू—प्रथम पुरस्कार
(२) कुमारी नन्सी कौल—द्वितीय पुरस्कार

एम० ए० पूर्वार्द्ध

(१) कुमारी विजयमोहिनी कौल—प्रथम पुरस्कार
(२) कुमारी कुसुम हण्डू—द्वितीय पुरस्कार।

६ सभापति द्वारा पढ़ाई जाने वाली बंगाली भाषा की कक्षाओं में अध्ययन करने के बाद कुछ सदस्यों ने बंगलाके सामान्य ज्ञान की परीक्षा दी। निम्नलिखित विद्यार्थी उसमें उत्तीर्ण हुए तथा उन्हें प्रमाणपत्र दिये गये :—

(१) सुश्री सन्तोष जारू (अनुसंधित्सु)
(२) श्री शशिशेखर तोषखानी एम० ए० (उत्तरार्द्ध)
(३) कुमारी फूल बामजई ,, ,,
(४) कुमारी वसन्ती रैणा ,, ,,
(५) कुमारी नन्सी कौल ,, ,,
(६) कुमारी रतना कौल ,, ,,
(७) कुमारी नीना कौल ,, ,,

दिनांक १४-९-६८ को गत सत्र की परिषद् का समापन तथा इस सत्र की परिषद् का उद्घाटन-समारोह विश्वविद्यालय के कुलपति तथा प्रदेश के राज्यपाल परमश्रेष्ठ श्री भगवानसहायजी के सभापतित्व में हुआ। इस अवसर पर श्रीमती भगवानसहाय, विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० जानकीनाथ भान, श्री शिवनारायण फ़ोतेदार, पं० श्रीकण्ठ तोषखानी तथा अन्य अनेक महानुभाव उपस्थित थे। इस समारोह का श्रीगणेश सरस्वती-बन्दना से किया गया। इसके पश्चात् सभापति डॉ० रमेशकुमार शर्मा ने परिषद् के सदस्यों का परिचय परमश्रेष्ठ श्री भगवानसहाय जी से कराया तथा कुलपति का स्वागत करते हुए सभापति ने समारोह में आने का कष्ट करने के लिए उनके प्रति आभार प्रकट किया। इसके पश्चात् मंत्री ने विश्वविद्यालय के सह-कुलपति तथा राज्य के मुख्य मंत्री श्री गुलाममुहम्मद सादिक का शुभकामना-सन्देश पढ़ कर सुनाया।

इसके उपरान्त मंत्री नीना कौल ने गत-वर्ष की रिपोर्ट पढ़ कर सुनायी। इस रिपोर्ट के पश्चात् साहित्यिक कार्य-क्रम प्रारम्भ हुआ। कार्यक्रम का आरम्भ मंत्री ने

अपने गद्य-काव्य से किया जिसमें जीवन की घुटन जो कि अन्तस में धँस कर दाह का कारण बनती है, का अंकन था। जीवन की घुटन के ये दग्ध बिम्ब स्थायी एवं मादक होते हैं तथा जीवन के आधार बन जाते हैं। गद्य-काव्य का शीर्षक था 'दग्ध-बिम्ब'। इसके पश्चात् पूर्वार्द्ध की विजयमोहिनी कौल ने अपनी कविता पढ़ कर सुनाई।' इस कविता में डल-सरोवर की कमलिनी के वसन्त एवं खिजाँ में बदलते रूपों का चित्रण था। इस कविता का शीर्षक था 'प्रश्न'। इसके पश्चात् अनुसंधित्सु सुश्री सन्तोष जारू ने अपनी एक रोचक—वार्त्ता पढ़ कर सुनाई। इस वार्त्ता में उनकी उस समय की दशा का चित्रण था जबकि सर्वप्रथम उन्होंने अपनी पहली रोचक वार्त्ता परिषद् में पढ़ कर सुनाई थी। इस रोचक-वार्ता का शीर्षक था—'परिषद के चक्कर में'। इस रोचक वार्त्ता की बड़ी प्रशंसा हुई। इस वार्ता के बाद पूर्वार्द्ध की बिमला मिस्त्री ने एक कविता पढ़कर सुनाई जिसमें जीवन के ऐसे भटकाव का, जिसमें चारों ओर बन्द दरवाजे मिलते हैं, बहुत सुन्दर चित्रण था। इस कविता का शीर्षक था—'चलता हुआ द्वार'। विमला मिस्त्री की कविताके पश्चात् उत्तरार्द्ध की वीणा चन्ना की कविता मंत्री ने पढ़ कर सुनाई जिसमें जिन्दगी के निराशा भरे प्रतीकों को यथार्थ रूप में चित्रित किया गया था। कविता का शीर्षक था 'रेंगते साये'। वीणा चन्ना की कविता के पश्चात् उत्तरार्द्ध की नन्सी कौल की कहानी सुश्री सन्तोष जारू ने पढ़ कर सुनाई जिसमें जीवन के दो भोले तथा कुटिल चित्र थे। कहानी का शीर्षक—था 'अधजली सिगरेट'। इस कार्यक्रम के अन्त में उत्तरार्द्ध के श्री शशिशेखर तोशखानी ने अपनी परम सुन्दर कविता 'मोम के पंख' पढ़कर सुनायी, जिसकी सभी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इस कार्यक्रम के पश्चात् सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ जिसे उपमंत्री (सांस्कृतिक कार्यक्रम) कुमारी फूल बामज़ई ने प्रस्तुत किया। इसका आरम्भ पूर्वार्द्ध के अशोक कुमार मल्ला ने 'बच्चन' के एक गीत से किया। फिर उपमंत्री सांस्कृतिक कार्यक्रम ने मीरा का एक भजन सुनाया। मीरा के भजन के उपरान्त श्री दीनानाथ नादिम का एक कश्मीरी सहगान हुआ, जिसमें स्वर्ग-भूमि कश्मीर की प्रकृति के मनहर बिम्ब थे। इसमें फूल बामजई, कुसुम हण्डू, बसन्ती जाला तथा नीना कौल ने भाग लिया। इस सहगान के उपरान्त उत्तरार्द्ध के दुर्जेय छेवांग ने एक लद्दाखी गीत सुनाया। दुर्जेय छेवांग के लद्दाखी-गीत के पश्चात् मंत्री नीना कौल ने एक ग़जल सुनाई। इस गज़ल के बाद एक डोगरी-सहगान प्रस्तुत किया गया जिसमें बसन्ती जाला, कुसुम हण्डु, कोशल्या चल्लू, विजयमोहनी कौल तथा नीना कौल ने भाग लिया। इस डोगरी सहगान के उपरान्त मंत्री नीना कौल ने गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का एक बंगला-गीत 'एकला चोलोरे' सुनाया।

सांस्कृतिक कार्यक्रम के पश्चात् मुख्य अतिथि परमश्रेष्ठ भगवानसहायजी ने पारितोषिक वितरण किया। तदुपरान्त उन्होंने अपने भाषण में कहा : "मुझे बड़ी ही खुशी है कि हिन्दी-विभाग जगा हुआ विभाग है और यहाँ के अध्यापक तथा विद्यार्थी

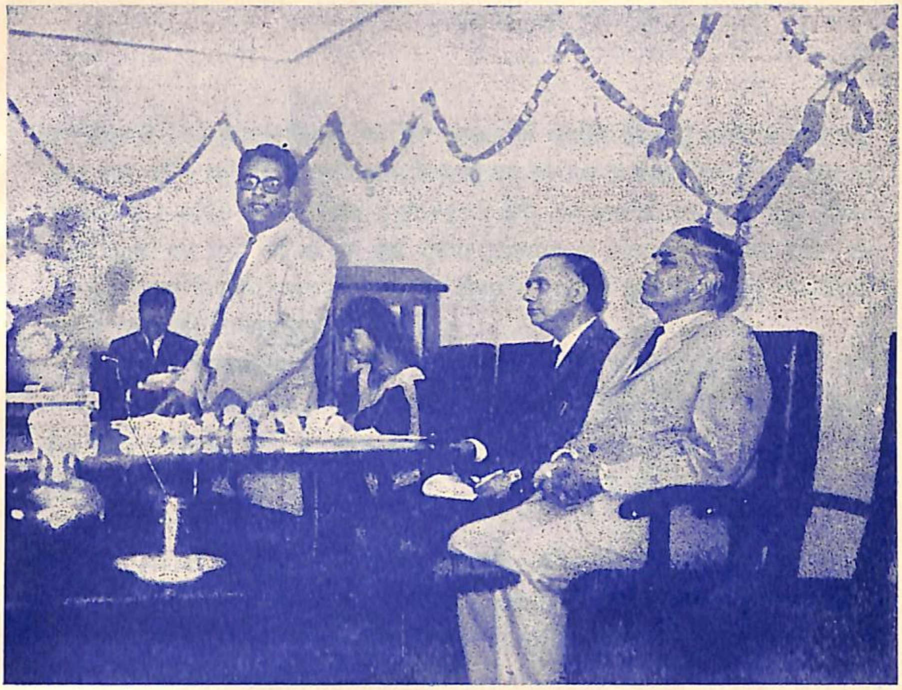

१९६८ की परिषद् के समापन समारोह का सभापतित्व करने के लिये कुलपति को धन्यवाद देते हुए विभागाध्यक्ष डॉ० शर्मा; साथ में परिषद् के उपसभापति डॉ० कौल, मंत्री नीना कौल तथा अध्यक्ष डॉ० भान (उपकुलपति)

१९६८ की परिषद् के समापन-समारोह के बाद राज्यपाल परमश्रेष्ठ श्री भगवान सहाय तथा उनकी धर्मपत्नी; साथ में हैं :—परिषद् के पदाधिकारी तथा उपकुलपति।

इस बात के लिये प्रयत्नशील हैं कि जिस विषय को उन्होंने लिया है उसमें वे कोई नई बात पैदा करें। बड़े ही आत्मविश्वास के साथ इस विभाग के विद्यार्थियों ने पूरा प्रोग्राम निभाया है। आपके यहाँ एक प्रयोग हो रहा है और इस बात का प्रयत्न हो रहा है कि हिन्दी-भाषा जो आगे बढ़े तो वह एक एक्सक्लूसिवनेस के आधार पर न बने बल्कि जो आधुनिक युग है उसकी ज़रूरतों को वह अच्छी तरह से पूरा कर सके। इसीलिए देश में भाषा की आवश्यकता होती है।

भाषा से साहित्य में लालित्य एवं सौन्दर्य इत्यादि आना चाहिए। हिन्दी का एक यह भी कर्त्तव्य है कि किसी न किसी तरह से इस देश के लोग एक दूसरे से बात कर सकें, (पास आ सकें) या ज्ञान हासिल कर सकें। मैं आप का कृतज्ञ हूं कि आपने मुझे यहाँ बुलाया। यहाँ आकर मुझे बड़ी खुशी हुई है। मैं परिषद् तथा विभाग की उन्नति की कामना करता हूँ।"

कुलपति के भाषण के पश्चात् सभापति डॉ० रमेशकुमार शर्मा ने कहाकि "कुलपति महोदय ने जो निर्देश हमें दिये हैं, हम पहले भी लगभग उन्हीं के अनुसार कार्य करते रहें हैं। मुझे पूरी आशा है कि जैसी परिस्थितियाँ हैं उनके अनुसार यथा-संभव विद्यार्थी एवं अध्यापक आगे बढ़ेंगे।"

इस भाषण के पश्चात् मंत्री ने मुख्य अतिथि तथा अन्य सभी आमंत्रित सज्जनों के प्रति अपना आभार प्रकट किया। मंत्री ने अपने सहयोगियों को भी धन्यवाद दिया जिनके सद्‌सहयोग से वह अपने कार्य में सफल रही।

अन्त में, मैं सभापति डॉ० रमेशकुमार शर्मा, उपसभापति, डॉ० भूषणलाल कौल के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ जिनके पथ-प्रदर्शन के फलस्वरूप परिषद् को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त अनुसंधित्सु सुश्री सन्तोष जारू, अनुसंधित्सु श्री मोहनलाल बाबू तथा अनुसंधित्सु—प्रतिनिधि श्री अमरनाथ शाँति की भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने समय-समय पर परिषद् के कार्य-क्रमों में अपना सद्‌सहयोग प्रदान किया। मेरे सहयोगियों श्रीमती चुन्नी हाण्डू, कुमारी फूल बामज़ई, तथा अशोककुमार मल्ला ने जो सहयोग दिया है उसके लिए मैं गर्व तथा हर्ष का अनुभव करती हूँ। इसके अतिरिक्त पूर्वार्द्ध की बिमला मिस्त्री ने भी मेरे कार्य में समय-समय पर हाथ बटाया। इन सब का स्नेह पूर्ण सहयोग सदा ही मेरा सम्बल रहा है।

मुझे इस बात पर हार्दिक प्रसन्नता होती है कि इस वर्ष साहित्यिक एवं साँस्कृतिक दोनों ही क्षेत्रों में हिन्दी-परिषद् को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। आशा करती हूँ कि अगले सत्र के मंत्री को मैं अपना कार्यभार सुचारू एवं सुव्यवस्थित रूप में सौंपने में समर्थ होऊँगी।

नीना कौल
मंत्री

श्री घनश्याम अस्थाना
प्राध्यापक अंग्रेजी विभाग
आगरा कालेज, आगरा।

*

बिजुरिया

१

झूमर-सी सीस पै, असीस-सी सुहागिन पै
रागिनी पै झूमत सितार जैसी बीजुरी ;
सागर में पोत-सी, कपोत-सी मयूरिनु में
ब्याउली की चूरी-झनकार जैसी बीजुरी ;
स्याम की अधर बेनु, रेनु में सरित जिमि
मेघन की म्यान में कटार जैसी बीजुरी ;
सहज बिबस्त्र अंग, उन्नत कनक सृंग,
संकर-जटा में गंगधार जैसी बीजुरी !

२

जुगुनू-सी कुंजन में, किंकिनी झनक जिमि
तमदुतिरेख-सी चमकदार बीजुरी ;
बननि में गंध, जूही-कंज भुजबंध जैसी,
आँधिनु के छन्द-सी झमकदार बीजुरी ;
नूपुर छुनक-सी, तुनकदार तन्बी सी
मेघ के मृदंग-सी गमकदार बीजुरी ;
अगिन पै पारे-सी, उजार हंस पाँख जैसी,
आँसूदार आँख-सी नमकदार बीजुरी !

कौशल्या चुल्लू
एम० ए० (पूर्वार्द्ध)

"प्रस्तर-प्रतिमा"

✻

तीन दिन से वर्षा थमने का नाम ही नहीं ले रही थी। हमारे आँगन में बादाम के पेड़ से पुष्प-पल्लव झड़-झड़ कर मिट्टी में मिल रहे थे। मैं अपने कमरे की खिड़की से उस बादाम के पेड़ पर गिरती वर्षा को बड़े ही विचार मग्न होकर देख रही थी। यह बसन्त ऋतु की वर्षा भी कितनी मन-मोहक होती है। अकस्मात् वर्षा थम गई और सूर्य की स्वर्ण-रश्मियाँ पवन के साथ मिलकर खिलवाड़ करने लगीं।

"यह प्रकृति भी कैसी चंचल-हृदया है। कितनी जल्दी दृश्यों पर पटाक्षेप कर देती है। अभी कुछ दिन पूर्व कैसे चाव से इसी प्रकृति ने अपने हाथों बादाम के पेड़ को पुष्पाभरणों से सँवारा था और आज अपने उन्हीं हाथों से उसका शृंगार नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जैसे उसे सधवा से बिधवा बना दिया—वह भी अपने ही हाथों—आह कितना साम्य है मुझमें और इस प्रकृति में ! मैं भी तो अपने ही हाथों अपनी स्वर्ण-आकांक्षाओं रूपी दृश्यपर पटाक्षेप करना चाहती हूँ—मैं भी तो······"

"दीदी बस बहुत हुआ। बस हो चुकी दीप जी से ढेर सारी बातें—अब बैठ भी जाओ ना" मेरी छोटी बहिन रिमी ने आवाज़ देकर मुझे जैसे तन्द्रा से जगा दिया। "दीप से—अरे नहीं मैं उससे बातें नहीं कर रही थी।" इसके साथ ही दीप का बिम्ब मेरे स्मृति-पटल पर अंकित हो गया। दीप—मेरा भावी पति जिसके साथ मैंने इच्छा से विवाह करना स्वीकार किया है। दीप—जिसका व्यक्तित्त्व भी इस सुनहरी संध्या की भाँति आकर्षक है और जिस प्रकार सूर्य की किरणों से बादाम के फूल खिल उठते हैं उसी प्रकार मैं भी उसे देखकर जैसे प्रफुल्लित हो जाती हूँ।" दीप का घर

मेरे घर के लिल्कुल सामने है और इसी से रिमी ने समझा होगा कि मैं संभवतः उसी के साथ बात कर रही थी।

पर जब से मैंने कॉलिज में पढ़ना आरम्भ किया है तब से ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेरे अन्दर एक अज्ञात सा परिवर्तन आता जा रहा है। मैं समझ नहीं पाती कि मुझे क्या होता चला जा रहा है। इस परिवर्तन के विचार मात्र से मेरी सारी देह काँप कर रह जाती है और अपनी स्मृतियों को केवल दीप में केन्द्रित करने का प्रयत्न करती हूँ—हाँ, दीप ने क्या कहा था—"ओह-ज्योति तुम केवल मेरी हो। तुम स्वयं अपनी भी नहीं हो""तुम"" तुम" प्रेमावेग में दीप चुप हो गया। उस समय मैं भी प्रेम विभोर हो गई और मैंने मन, वचन और कर्म से केवल दीप की बनी रहने का प्रण किया था।

लेकिन अब अनुभव करती हूँ कि मानव-हृदय भी कैसी डाँवाडोल प्रकृति का है। काश ! दीप, मैं केवल तुम्हारी ही बन कर रह पाती—केवल तुम में ही जलने वाली ज्योति। लेकिन तुम्हें कैसे समझाऊँ दीप कि कोई पवन का झोंका तुम्हारी ज्योति को स्थिर नहीं रहने देता—हाँ पवन ही तो—पवन खन्ना—हमारे कॉलिज का लेक्चरर जो हमारे ही मुहल्ले में आकर रहने लगा है। सागर की भाँति गम्भीर व्यक्तित्व का स्वामी।

न जाने क्यों पहले दिन ही उसे देखकर मैंने कुछ अजीब सा अनुभव किया था। ऐसा प्रतीत हुआ था कि मेरा हृदय दो दिशाओं में दौड़ना चाहता है। पहले तो मैं इसे अपने मन का भ्रम समझाती रही परन्तु कुछ दिन बाद मेरे मन ने स्वयं ही मुझसे कह दिया कि मैं अनायास ही पवन की ओर खिचती चली जा रही हूँ। उसके लिए मेरे मनमें ऐसी भावना जागृत हुई जिसे मैं श्रद्धा भी नहीं कह सकती—हाँ, श्रद्धा से कुछ अधिक अपनत्त्वपूर्ण""तो क्या प्रेम। ओह ! कैसी विडम्बना है। मैं—मैं पवन को प्यार करती हूं—नहीं, नहीं ऐसा असम्भव है। ज्योति एक समय एक दीप में जल सकती है और फिर मैं तो दीप की बनने वाली हूँ।

यह प्रेम सृष्टि का सबके बड़ा रहस्य है। मैंने मन को लाख समझाने का प्रयत्न किया पर यह कमबख्त जब माने तब ना। यद्यपि मैं यह जानती थी कि पवन विवाहित है परन्तु फिर भी मैं उसे मन से न निकाल सकी। वह जैसे बलपूर्वक मेरे हृदय में समाने लगा। मेरा जीवन एक दोराहे पर आ खड़ा हुआ है। मैं असमंजस में पड़ी हूँ कि किस रास्ते को पकड़ूँ। एक रास्ता उस झरने की ओर जाता है जिसमें गति है, वेग है, जीवन का प्रवाह

है जिसे देखकर जीवन की प्यास बढ़ जाती है—यह है दीप और दूसरी राह का रुख उस सागर की ओर है जो प्रशांत है, गम्भीर है, जिसके पास प्यासे रहकर भी जैसे जीवन की सम्पूर्ण प्यास मिट जाती है—और यह सागर पवन है। एक में वासना की बू है और दूसरे में वासना लेशमात्र को भी नहीं।

पर तभी समाज का चित्र मेरी आँखों के आगे छा जाता है—तो क्या मैं आधुनिक तितली हूँ जिसका मन एक फूल के पराग से नहीं भरता-भले ही वह फूल उसके कारण मुर्झा क्यों न जाए। "धिक्कार है ज्योति तुमको धिक्कार है। तुम दीपक में स्थिर रहने की जगह शून्य पवन में सर्वदा के लिए डगमगाना और थरथराना चाहती हो? क्या यही है तुम्हारा आदर्श? तुम अपने स्वर्णिम भविष्य का गला अपने हाथों स्वयं घोंट रही हो"—मेरे अव-चेतन मन की प्रतिच्छाया मुझे धिक्कार उठती है और उसका धिक्कारना भी बिलकुल ठीक है। पर क्या करूँ? इस मनको कैसे समझाऊँ जो मेरे जीवन-नाटक के पटाक्षेप पर भी कुछ आक्षेप नहीं करता। ओह—यह मुझे क्या हो गया है—मैं पागल हो जाऊँगी। यह विचार नोंच रहे हैं—काट रहे हैं। मेरे अन्तस् पर अपने तीक्ष्ण दाँतों के निशान बना रहे हैं। अपनी समस्त चित्तवृत्तियों को फिर से दीप की बातों को स्मरण कराने में रत करती हूँ। पर ऐसा लगता है कि उसकी प्रेम-रस में डूबी बातें अब मुझे उतनी विभोर नहीं करतीं।

सोचती हूँ, जब दीप को मेरे इस मनोविकार का पता चल जाएगा तो वह क्या सोचेगा। उसकी सूक्ष्म भावनाओं को कैसी ठेस पहुँचेगी। हो सकता है वह सचमुच ही झरने का रूप धारण कर ले। झरना भला कब अपनी राह की बाधाओं से घबरा कर अपनी गति बन्द कर लेता है। वह तो जिस प्रकार हारा हुआ सिपाही झल्ला-झल्ला कर वार करता है उसी प्रकार उछल-उछल कर गरज-गरज कर अपना मार्ग बना ही लेता है पर इस विचार मात्र से ही मेरे समस्त शरीर में फुर-फुरी आती है।

तो क्या मैं समाज के हाथों की कठपुतली बन कर रहूँ? नहीं—आधु-निक युग में तो सबको मुक्त जीवन-यापन करने का अधिकार है। हाँ, मैं भी मुक्त रहूँगी। मैं झरने की राह में अपने को समर्पित नहीं होने दूँगी। मैं शिला—बनूँगी—एक प्रस्तर—प्रतिमा जिस पर झरना गरज-गरज कर सिर पटक-पटक कर बहेगा पर उसे अपने साथ बहा नहीं सकेगा। अपने ऊपर

कठोरता की ऐसी फिसलन लगाऊँगी कि झरने का पानी उस पर ठहरने नहीं पाएगा और सागर की लहर भी उसे केवल भिगो कर चली जायगी—उस पर स्थिर नहीं रहेगी। और वह प्रस्तर-प्रतिमा अपनी विवशता के क्रन्दन को सागर की उछाल और झरने की कल-कल ध्वनि में घोल देगी—सम्मलित कर लेगी।

शशी दिवसधूसरो गलित यौवना कामिनी
सरो विगत वारिजं मुखनमक्षरं स्वाकृतेः।
प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो
नृपाङ्गनगतः खलो मनसि सप्त शल्यानि मे॥

—भर्तृहरि नीतिशतकम्

(दिवस में हीनाभा चन्द्र, गलित-यौवन कामिनी, कमल विहीन सरोवर, सुन्दर निरक्षर मुख, धनपरायण स्वामी (बड़ा व्यक्ति), सतत दुर्गति को प्राप्त होने वाला सज्जन, राजदरबार में दुष्ट, ये सात शूल मेरे मन को सालते हैं।)

*   *   *   *

जिव मारि मारो बापुरा सबका एकहि प्राण।
हत्या कबहुँ न छूटिहै कोटिन सुने पुराण॥

—कबीर

*   *   *   *

पीर सबन की एकसी मूरख जाने नायँ।
कांटा चुभे पीर होइ, गला काटि किमि खाहिं॥

—मलूकदास

*   *   *   *

खंजर चले किसी पै तड़पते हैं हम ,अमीर'।
गोया जहाँ का दर्द हमारे जिगर में हैं॥

ये बोझे—भीतर के

डॉ० रमेशकुमार शर्मा

*

मेरे दिवंगत पिता
जब मैं छोटा-सा था तब से
पूछे, बिना पूछे,
मौके, बे-मौके,
कहा करते थे :—
"बेटा !
सदा सच बोलना
और खुश रहना"
× × ×
उनका यह जीवित वाक्य
मेरे मन के, अँधेरे कोनों में
आज भी—
बार बार
सोता, जागता और ऊँघता है ;
मगर
जैसे ही मैं
टिमटिमाते हुए सत्य की ओर बढ़ता हूँ
आवश्यकता की साँपिन
मेरे लड़खड़ाते पैरों में लिपट जाती है
और,
लोभ तथा भय के दाँतों से

झूठ का विष
मेरे सारे अस्तित्त्व में व्याप्त कर देती है ;
मुझे हताश-हिरास कर देती है ।
और तब,
अपने तपस्वी पिता की विरासत
मेरे काँपते हाथों से
खिसक खिसक पड़ती है ।
मैं गिर-गिर पड़ता हूँ—
मगर फिर फिर आगे बढ़ता हूँ ।

× × ×

मुझे सारी सुन्दर वस्तुएँ पसन्द हैं—
मन को गद्‌गद् करने वाली खुशबू,
बच्चों के स्वस्थ गुलाबी चेहरे,
पुरानी किताबों की
तथा ताज़ी चीरी हुई लकड़ियों की
और
ताज़े खुले पैकिटों के बिस्कुटों की—महक ।
सुन्दर हाथों की
मोतियों जैसी लिखाई ।
चीड़ के ऊँघते पेड़ों से छेड़छाड़ करती
नवयुवती, वासन्ती पवन ।
कपोल की अरुणाई में
मचलने वाला तिल ।
कहीं भी हो, और किसी में भी हो,
हल्का लाल और गुलाबी रंग ।
चाँदनी की महकती सेज पर
मस्त सफेदों की भुजाओं में
श्लथ सोई हुई
पतली बलखाती सड़क,
और—
बेधड़क आंखों में झाँक कर

सीधे दिल को छू लेने वाली
दूध-सी पवित्र, नज़र।
मेरी अपनी बुरी आदतें,
तथा—
मेरे सामने की गई—मेरे मित्रों की बड़ाई—
ये सभी मुझे पसन्द हैं।
स्वच्छ घुँघराले, लम्बे केशों वाली
लहराती, काली वेणी में लगे
कोमल फूल की—गालों से होड़ करती—ललाई।
(तीन-मंजिले मकबरे-सा,
ऊँचा, नकली जूड़ा देख कर—
घबरा जाता हूँ)
और मुझे ये भी पसन्द हैं ; सुन्दर लगते हैं :—
कक्षा के सारे विद्यार्थियों का
मेरे बताये काव्य—अर्थ को समझकर
खिल जाना और सिर हिलाना।
रेडियो में अचानक
मेरी 'फेवरिट ट्यून' का उभर आना।
अपने मदमाते वेग से
गिरि-कन्दराओं के हृदय कँपाती
धृष्ट, फेनवती, पत्थरों से भरी—पहाड़ी नदी।
निकट बैठा कोई
प्रिय, मधुर-उष्ण स्पर्श।
स्वप्न-लोकों को रचती
मौन नृत्य करती, थिरकती,
हलके हलके गिरने वाली
सती-सी सफेद, पहली बर्फ।
ये भी मुझे सुहाते हैं
जैसे :—
व्यायाम करते युवक का
स्वेद-स्नात, गठीला शरीर,

और जब जाड़ों में
भूखा थका लौटता हूँ तब
गरम कॉफी की महक ;
प्रिया की आटे से सनी, थकी उँगलियाँ
तथा बनारसी पान की खुशबू में बसी साँसें,
और
उषा-रक्तिम तरंगों में इठलाती-मछलियाँ।
मुझे साफ सुन्दर रेशमी कपड़े भी पसन्द हैं।
स्वच्छ शय्या पर
बर्फ-सी सफेद चादर
जिस पर लेटने का भी मन न करे
लगता है, जैसे, उसे, बस देखा ही करे।

× × ×

ऐसी सफाई, सचाई और सुन्दरता का
ग्राहक मैं ; एक दिन
मन के खुरदुरे, अँधेरे को
चाँदनी के अमृत से सींच कर
जो, मुदित-मन, पहुँचा घर
तो धक् से रह गया !
अगर-बत्तियों से सुवासित शयन-कक्ष में
मेरी दुग्ध-धवल शय्या पर,
वह बैठा था ; गन्दा, घिनौना, घृणित और वीभत्स।
काले बदसूरत, अस्पष्ट चेहरे पर
सड़े आलूबुखारे-सी उसकी
अन्धी, सूजी हुई, उबली-सी
लाल आखें, मुझे घूर रहीं थीं,
और पीले कीचड़ से भरी गजबजा रही थीं।
खुतरे हुए
कोढ़ के नकाब में छिपे
भद्दे मुख के ऊपर
गन्दे बालों का बदसूरत छत्ता-सा रखा था।

उस मुँह पर एक ऐसा भयानक
विकृत-वीभत्स भाव था
जिसे देखकर
भीतर ही भीतर
मेरी आत्मा सिमिट-सिकुड़ गई।
सारे अंगों में फुरफुरी-सी फैल गई।
उसके शरीर में
रक्त और पीप से भरी
संसार भर की ग़लीज दुर्गन्ध
किलबिला रही थी।
सारा कमरा उससे सड़-सा गया था—
ऐसे वह मेरे पलंग पर पड़ा था !

× × ×

भय और आशंका-मिश्रित क्रोध में
काँपते हुए
मैंने पूछा :—
"तू कौन है"
और उससे उठने को कहा।
परन्तु
वह मौन ही रहा—न हिला न डुला।
बस
पीले दाँतों की
सड़ाँध-भरी हँसी
हँसता रहा।
उसके पास जाने में उबकाई आती थी
और छूने में घृणा।
फिर भी मैंने
कौने में रखी छड़ी उठाकर
उसके पिलपिले शरीर को कोंचा
और डाँट कर कहा :—
"अबे तू कौन है ?"

सड़ते नाले के 'मेनहोल' की
गरम दुर्गन्ध से—भर गया कमरा
जो उसने मुँह खोला अपना ।
खरखराती आवाज में वह बोला :—
"ले देख मैं कौन हूँ ।"

× × ×

मैंने जो ध्यान से देखा
तो मेरे सारे अंग ढीले पड़ गये
कपड़े पसीने से तर हो गये
मानो शरीर से प्राण ही निचुड़ गये ।
"यह तो—
यह तो वही चेहरा है
जो मेरा है ।
जिसे प्रतिदिन प्रत्येक 'ऐंगिल' से
दर्पण में देख कर, खुश होता हूँ ।
हाँ, यह तो वही चेहरा है
जो मेरा है ।"

× × ×

सड़क पर पड़े किसी
कुचले हुए, अधमरे, जहरीले साँप के समान
घिसटता, खिसकता वह चला
और, अपने घिनौने मुख को
मेरे मुँह से सटा दिया ।
उसकी गन्दी साँस ने
मुझे बेदम बना दिया ।
बोला वह :—
"देख ! मैं तू हूँ"
मैंने भर्राई-लड़खड़ाती जबान से कहा :—
"तू झूठा है—नकली है
सच्चा और असली मैं—मैं हूँ"
वह गुर्राया :—

"सच्चा और असली तू—मैं हूँ
फिर—
वह मेरे निकट आने लगा
और निकट आने लगा
सड़े मुर्दे-सा उसका ठण्डा शरीर
मेरे शरीर को छूने लगा।
फिर.........
धीरे धीरे...........
वह मुझ में समा गया।

× × ×

तब से मैं निरन्तर
उस बोझे को
अपने अन्तर में लिए फिरता हूँ।
मानो मेरी आत्मा में
कोई ज़हरीला साँप—कुण्डली मारे बैठा है;
जो मुझे
जब उसके मन में आता है
डसता रहता है।
सच्चा और असली मैं
कौन-सा हूँ
तथा
झूठा और नकली मैं
कौन-सा हूँ
आज मैं, यही खोजता फिरता हूँ।
कभी कभी
अपने दिवंगत पिता से
पुकार कर पूछता हूँ
"आप सच बोल कर भी
कैसे खुश रह लिए?
मैं तो—
मैं तो, कोशिश करके भी

न सच बोल पाता हूँ
और न
खुश ही रह पाता हूँ !"

का भा जोग कहानी कथें। निकसे न घिउ बिना दधि मथें ।।
जौं लहि आपु हिराइ न कोई। तौ लहि हेरत पाव न सोई ।।
पेम पहार कठिन विधि गढ़ा। सो पै चढ़ै सीस सों चढ़ा ।।
पँथ सूरिन्ह कर उठा अँकूरू। चोर चढ़ै की चढ़ मंसूरू ।।

—जायसी

*　　　*　　　*

मैमन्ता मन मारिले न्हान्हा करि करि पीस।
तब सुख पावै कामिनी, ब्रह्म झलक्के सीस ।।

—कबीर

*　　　*　　　*

"दारुन बैरी मीचु के बीच विराजति नारि"

—तुलसी

*　　　*　　　*

दुष्टा भार्या शठं मित्रः भृत्यश्चोत्तरदायकः
ससर्पेच गृहे वासो मृत्युरेवन संशय

एक ख़त—वादी के नाम

शामा सौंधी
भू० पू० कोषाध्यक्ष,
हिन्दी परिषद्

*

नई दिल्ली, जून १९६९

मेरी वादी !

तुमसे दूर आकर ज़िन्दगी के अकेले पथ का अहसास मुझे हमेशा किसी महबूब चेहरे की याद दिला देता है। ऐसा लगता है, तुमसे ही दूर नहीं मैं अपने से भी दूर आ गई हूँ।

यह राजधानी है हिन्दोस्तान की—। सामने इंडिया गेट है। उसके सामने बने हुए 'राउण्ड एबाउट' में से अब जार्ज फिफ्थ का बुत उठा लिया गया है। किसी अजायबघर के चार कोने वाले कमरे में उसका अस्तित्त्व कैद हो गया होगा। पूरे हिन्दोस्तान का अस्तित्त्व भी तो राजधानी में ही समा गया है।

कल की शाम भी सदा यादगारी शामों में शामिल रहेगी। लालकिला देखते हुए एक योरुपियन मिल गया था—माईकॅल। शाम को 'सोपएल्यूमेरे' देखने एक साथ गये। लाइट और संगीत पर आधारित यह मुगलिया इतिहास बहुत ही दिलचस्प रहा। ऐसा लगा, संगीत की गली बनी थी और रंग बिरंगी रोशनी का उजाला था ; वहाँ से गुज़र कर हम हुमायूँ से लेकर बहादुरशाह ज़फर तक पूरे मुगलिया अतीत की वादी में झाँक आये हों। वहाँ सब वैसे का वैसा है—लड़ाइयाँ अब भी हाथियों और घोड़ों पर होती हैं, जशन अब भी रंगमहल में उसी तरह मनाये जाते हैं, शतरंज के मोहरे अब भी उसी चाल से चलते हैं, सिर्फ हम आगे बढ़ आये हैं।

माईकॅल बहुत उदास हो गया था। पूछने पर बोला—"संगीत हमेशा मेरी वह दुनियाँ बसा देता है जो असलियत में नहीं बस सकी। पर संगीत के खत्म होते ही कल्पना में बसी उस दुनियाँ का ज़र्रा-ज़र्रा बिखर जाता है।" यह कैसे हो जाता है कि कई बार हम बिलकुल एक-सा सोचते हैं। लगता है दुनियाँ में सब के दुःख-दर्द एक-से हैं। सब एक ही राह पर चलते हैं—सिर्फ उनकी मंजिल अलग-अलग होती है, और ऐसी किस्मत वाले कम ही होते हैं, जो मनचाही मंजिल तक पहुँच जायें। जुदाई, उनके लिये तो मेहरबानी होती है, जिन्हें जिन्दगी में फिर मिलना होता है और उनके लिए कहर, जिन्हें फिर जिन्दगी में कभी एक दूसरे का मुँह देखना नसीब नहीं होता। मैंने उससे और कुछ नहीं पूछा। बहुत दर्द होता है—सुनने में भी।

वादी! तुम्हारा हर कोना, हर किनारा अपना जान पड़ता है और यहाँ की हर चीज़ में बेगानापन। चिनार के लाल पत्तों को छूते हुए हाथों में काँगड़ी की गर्मी उतर आती है, डल के नीले पानी में हाथ डाल कर अजीब-सा मोह हो आता है और पहाड़ों पर पड़ी बर्फ की ठंडक यूँ ही कँप-कँपी छेड़ देती है। सफेदों को देख कर लगता है अपने ही ख्याल सिर उठाये खड़े हों। जमीन के नीले पानी में हज़ारों अनलिखी नज़्में और अनगाये गीत तैरते रहते हैं। वहाँ गुज़ारा हर पल अपने में एक जीती-जागती ज़िन्दगी बन जाता है। वादी! तुम्हारे लोग भी इन चीजों की बोली समझते हैं—यहाँ इन्सान-इन्सान को समझने से इन्कार किये हुए हैं।

उस दिन मैं शीला के साथ कुतुबमीनार देखने जा रही थी। वह विदा की बातें सुना रही थी। उसे शिकायत है कि मैं अपने बारे में उसे कुछ नहीं सुनाती, जैसे पहले सुनाया करती थी। कई बार कोई-कोई कहानी ऐसे मोड़ मुड़ जाती है कि सुनाने वाले की जबान और सुनने वाले के कान दोनों ज़ख्मी हो जाते हैं। पर शीला को उस मोड़ का ख्याल कभी नहीं आया होगा। वह कह रही थी—

"शैल! मैं देखना चाहती हूँ वह कोई कैसा है कि तेरी ज़बान से उसके लिए शिकायत के दो बोल भी नहीं निकलते।"

मेरे पाँव ने एकदम ब्रेक दबा दी—

"क्या हुआ?"

"सामने देखो।"

मजदूर सड़क खोद रहे थे—उसे ठीक करने के लिये बार-बार सड़क

को खोदा जाता है—नई रोड़ी और तारकोल की तहें बिछाई जाती हैं फिर उन्हें दबाने के लिये रोड-रोलर चलाया जाता है। सड़क पर ज़ख्मों के निशान बढ़ते रहते हैं और उन पर लगी टाँकियों की गिनती भी। कार चलाते हुए ये टाँकियाँ सदा मुझे अपने विश्वास पर लगी टाँकियों की याद दिलाती रहती हैं। कई बार मैं बीच सड़क पर गाड़ी रोक देती हूँ। कुछ समझ नहीं आता क्यों ? शायद मेरा दिल कोई ऐसा आदमी ढूँढ़ता है जिसे अपने विश्वास की चादर कभी रफू न करनी पड़ी हो। देखना चाहती हूँ उसके चेहरे पर कैसा नूर होगा, उसे सब पर कितना भरोसा होगा। पर कोई ऐसी चादर वाला होगा भी ?

तुग़लकाबाद के इन खण्डरात को देख कर मुझे सिर्फ एक ही ख्याल आता है। इन गिरी हुई मीनारों और उजड़े हुए वीरान महलों की छतों के नीचे न जाने मुहब्बत की सरगोशियों के कितने सिलसिले, शाही फरमानों की बलि चढ़े होंगे। किले के अन्दर कोई हरा वृक्ष नज़र नहीं आता। शायद भटकती रूहें और अधूरी मुहब्बतें उन्हें पनपने नहीं देती होंगी। इधर-उधर फैले छोटे-बड़े पत्थर, अँधेरे गुम्बज, टूटी सीढ़ियाँ सब थके-थके से लगते हैं। अपने ख्याल भी कभी-कभी कितने थक जाते हैं !

कई जगह मेरे कदम खुद ही रुक गये—ऐसा लगा जैसे मुझे कोई आवाज़ दे रहा हो, कोई जाना पहचाना चेहरा बार-बार मेरे पीछे आ रहा हो। लेकिन वादी ! मेरा दिल यह हकीकत भी जानता था कि यह मेरे अपने ही दिल का वहम है—मेरी अपनी ही नज़र का फ़रेब है। उन सिल-सिलों को गुज़रे तो ज़माना हो गया है। वे रौनकें, वे हंगामे केवल अतीत का एक हिस्सा बन गए हैं। मुहम्मद तुग़लक की तरह जो इतिहास के कुछ पन्नों में कैद होकर रह गया है। बहुत जालिम था वह।

इन्सान बाहर से कैद रह कर भी जी सकता है पर अन्दर की आज़ादी के बिना……। आन्तरिक अवरोध और उलझनें तो इन्सान को कदम-कदम पर रोक लेती हैं। ये हादसे ज़िन्दगी को अपने पंजे में इस तरह क्यों कस लेते हैं कि इन्सान की बोलती ज़बान खामोशी की जंज़ीरों में जकड़ी जाती हैं—और चलते-फिरते हाथ पाँव मजबूरियों की सलाखों में कैद हो जाते हैं। दुनियाँ से रिश्ता हँसी भर का रह जाता है। उस ज़िन्दगी में किसी के आ जाने से या चले जाने से कोई फर्क नहीं पड़ता। उसके चेहरे की हँसी का उसके दिल, उसकी रूह, उसके जज़्बात से कोई रिश्ता नहीं होता। बड़ी

माँ ठीक कहती हैं—मुझे ग़लत चीजों से प्यार हो जाता है। गीत लिखना वह सबसे पहले गिनती हैं। यह काम उनके गाँव का एक पागल किया करता था। उसकी कहानी सुन कर मैंने कहा था—

"नहीं माँ, कई बार जिन्दगी इसी बात को तरसते गुज़र जाती है कि जिन्हें हम सब कुछ दिखाना चाहते हैं वे कभी मुड़कर भी उधर नहीं देखते। जितना वे देते नहीं, उससे कहीं ज़्यादा ले लेते हैं।"

"यह तो अपनी-अपनी किस्मत होती है, पर तू भी उसी जैसी बातें क्यों करने लगी?"

"बड़ी माँ ! किस्मत का क्या, वह तो इन्सान के सामने से परसी हुई थाली उठा कर ले जाती है।"

—और बड़ी माँ एकदम उठ कर चल गई थीं—पता नहीं क्यों ?

जनसंघ वाले पुरानी देहली साफ करवा रहे हैं। मोतिया खान, बेला रोड़ और कुतुब रोड़ की सब झोंपड़ियाँ उठवा दी गई हैं। पहले राजपथ से होते हुए इन सड़कों पर आती थी तो कार की विंड-शील्ड पर हमेशा एक चेहरा उभर आया करता था—नाज़ुक-सा प्यारा चेहरा। वह चेहरा मेरे पापा का होता था, जो कहा करते थे—'इन्सान अगर अमीर के महल को देखकर जीना चाहें तो कभी जी नहीं सकता। जीना ग़रीब की झोंपड़ी ही सिखा सकती है।'—और उनके मुँह पर वक्त सन्तोष की लकीरें और भी गहरी कर देता था। मैं कई बार कनाट प्लेस में चक्कर लगाते हुए लोगों की शक्लें देखती रहती हूँ—उनमें कुछ ढूँढ़ती रहती हूँ। लगता है, सबने अपने दिलों की झोंपड़ियों में महलों के ख्वाब सजा रखे हैं।

यह हिन्दोस्तान का सबसे बड़ा ओपन एयर थियेटर है—रवीन्द्र-रंगशाला। पार साल से लगभग बना पड़ा था, पर खोलने के लिए कोई मिनिस्टर खाली नहीं मिल रहा था। साथ में बुद्धा-जयन्ती बाग़ है—फूल ही फूल बिखरे पड़े हैं—ऊपर नीचे हर तरफ। फूल बहुत नाज़ुक और सुन्दर होते हैं। कई बार मैं कुछ बातें करते-करते इसलिए चुप हो जाती हूँ कि कोई दूसरा वही बात किसी और के लिए न कह दे। मुझे लगता है, वे बातें पूजा के लिए एकत्रित फूल हैं और मैंने संगमरमर की एक मूर्ति पूजा के लिए चुनी भी थी, पर उसने यह कह कर अपने पाँव पीछे कर लिये कि उसे वह फूल पसन्द नहीं आये। मैंने उन फूलों को सँभाल-सँभाल कर रखा, पर कहीं न कहीं एक दो फूल गिरते ही गये—पर मैंने उस राह से किसी को भी

गुज़रने नहीं दिया। पत्थर की उस मूर्ति को भी मैंने कभी दोष नहीं दिया—कि उसने इन्सानी भावनाओं की बेकद्री की। उसके पास इन्सान का दिल था भी तो नहीं कि वह इन भावनाओं की कद्र करता। पत्थर के बुतों ने कब किसको सुख दिया है ?

जामा मस्जिद के सामने मेला लगा है। हर जुम्मे को यहाँ मेला लगता है। लोग जुम्मे की नमाज़ यहाँ पढ़ते हैं। उनके लिबास से, उठने-बैठने के ढंग से—सब चीज़ से इस्लामियाँ महक आती है। बाज़ार लगता है जहाँ हर चीज़ मिल जाती है—सिवाय खुशियों के। तरह-तरह की कीमतों पर चीजें बिक जाती हैं—कभी दुकानदार खुश होता है और कभी खरीददार। पर इन्सान की ज़िन्दगी एक बार ग़लत कीमतों पर बिक जाये तो फिर कभी असली कीमत पर आ नहीं सकती। यही वक्त के बाज़ार में दुनियाँ का दस्तूर रहा है ……और फिर ऐसी ज़िन्दगी की सिर्फ एक चीज़ अपनी होती है—दर्द ! दर्द जो कई बार इन्सान को शैतान बना देता है और कई बार शैतान को इन्सान; दर्द जिसे गले लगा कर इन्सान हजारों की भीड़ में भी अकेले का अकेला रह जाता है और कभी वीराने में भी जश्न मना लेता है। उसको अपने महबूब के पाँव की आहट तो जिन्दगी भर सुनाई देती रहती है, पर वह कभी उसे देख नहीं सकता।

मुझे भी लगता है, मैं तुम्हें कभी देख नहीं सकूँगी। तुम मुझे लिख भी नहीं सकती। पर मैं तो लिख सकती हूँ। मुझे यहाँ देहली में बैठे-बैठे भी हमेशा यही लगता है कि मैं निशात और शालीमार की रविशों पर हैरान परेशान घूम रही हूँ कि तुम मुझे अपने से दूर जाने से रोक लो—पर वादी ! ज़िन्दगी की सबसे कड़वी सच्चाई 'जाना' है ; वही सत्य है, वही हकीकत है।

तुम्हारी
शैल

सोनमर्ग में कुछ क्षण

श्री रामदत्त शर्मा
प्राध्यापक जन-प्रशासन
विभाग, जम्मू तथा कश्मीर
विश्वविद्यालय, श्रीनगर

*

भटकते वीराने
आवारा सुनसान जंगल
टूटते झरनों के जिगर
काँच-से चूर चूर
रिसते, श्वेत हिम-शिला-खण्ड
जिनसे अलग होता
कोई काँच-पिंड।
खामोशियाँ भिक्षुणियों-सी
भटकती दरबदर,
चुप्पियाँ रौंदता
कोई भारतीय सेना का
ट्रक-कारवाँ!
क्षितिज से निकलती
काली चीडों की
प्रश्न चिह्न-सी पलकें,
अजगरों की तरह
पहाड़ियों को निगलती,
फैलती, सिमटती।
प्रकाश आहिस्ता से

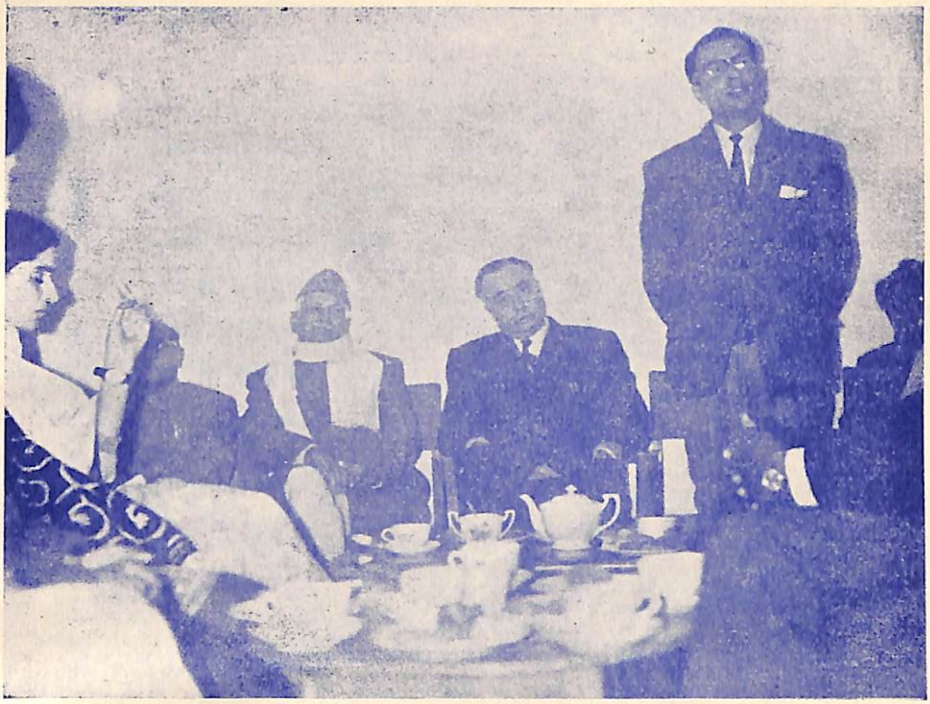

डॉ० भूषणलाल कौल अपने सम्मान में किये गये उत्सव में बोलते हुए । बैठे हैं :—
पं० तिवारी तथा उपकुलपति डॉ० भान ।

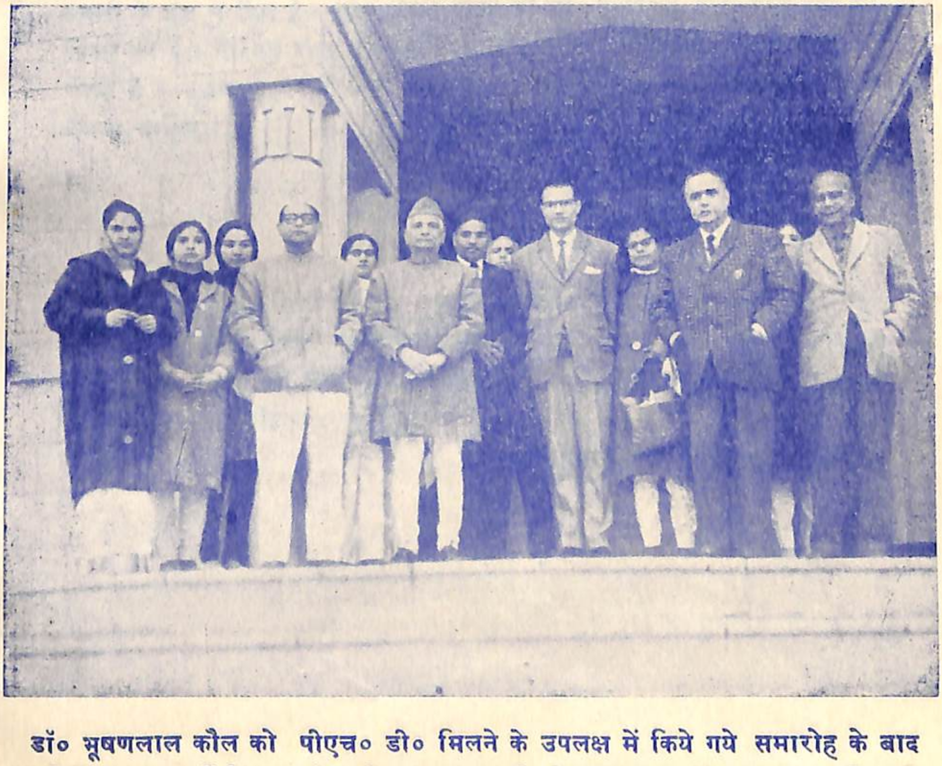

डॉ० भूषणलाल कौल को पीएच० डी० मिलने के उपलक्ष में किये गये समारोह के बाद अतिथिगण । बायें से :—डॉ० रमेशकुमार शर्मा विभागाध्यक्ष, पं० जगन्नाथ तिवारी डॉ० कौल, उपकुलपति डॉ० भान ।

पग धरता
कुण्डली मारे सर्प-सा ।
मौन शान्त सौनमर्ग
सोया अजगाया
कोई नन्हा बालक
अरीते वक्त का
एक लहमा-भर

साँप के दाँत में विष रहता है—लोग उससे बचते हैं—डरते हैं; मधु-मक्खी के डंक में विष है—लोग उसके शहद को भी इसीलिए डरते-डरते छूते हैं; बिच्छू की पूँछ में विष रहता है—इसीलिए लोग उसकी पिछाड़ी से भी कतराकर चलते हैं। दुर्जन के शरीर के कण-कण में विष रहता है—उसकी छाया से भी बचना चाहिए।

—ब्रज की एक कहावत

● ● ● ●

एक दफ़ा मिर्जा ग़ालिब मकान बदलना चाहते थे। एक मकान खुद देखकर आये, फिर उसको देखने के लिए बीबी को भेजा। वह देखकर आई तो उन्होंने कहा, "इसमें तो लोग बला बताते हैं।" मिर्जा ग़ालिब ने कहा कि "दुनियाँ में आपसे बढ़ कर कोई बला है ?"

—यादगारे ग़ालिब—हाली से

सम्पादकीय

पिछले वर्ष २० अक्टूबर की सन्ध्या के ५ बजे दिल्ली में हिन्दी के प्रसिद्ध अध्यापक पं० जगन्नाथ तिवारी का अभिनन्दन समारोह हुआ। समारोह का सभापतित्व दिल्ली के उपराज्यपाल डॉ० आदित्यनाथ झा ने किया। समारोह में अन्य गण्यमान्य अतिथियों के साथ हिन्दी के वरिष्ठ अध्यापक, लेखक, विचारक तथा समालोचक उपस्थित थे। समारोह में सभापति के अतिरिक्त डॉ० बाबूराम सक्सेना, डॉ० नगेन्द्र, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री भगवानसिंह जी, डॉ० भगवत्स्वरूप मिश्र तथा डॉ० रमेशकुमार शर्मा के भाषण हुए। आगरा कालेज एवं जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय (कश्मीर तथा जम्मू मण्डल) में हिन्दी के आचार्य तथा विभागाध्यक्ष के पद पर रहकर पं० जगन्नाथ तिवारी ने हिन्दी की जो सेवाएँ कीं, उसके लिए पं० तिवारी की सभी वक्ताओं ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। समारोह के अन्त में डॉ० झा ने पं० तिवारी को उनके सम्मान में प्रकाशित अभिनन्दन-ग्रंथ भेंट किया। अभिनन्दन ग्रन्थ में काव्यशास्त्र सम्बन्धी परमोत्तम सामग्री संग्रहीत है। ग्रन्थ के प्रधान सम्पादक डॉ० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी हैं। सम्पादक मण्डल के अन्य सदस्य हैं—डॉ० नगेन्द्र, डॉ० विश्वनाथ प्रसाद, डॉ० विनयमोहन शर्मा, पं० हरिशंकर शर्मा, डॉ० विजयपालसिंह, डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, डॉ० छैलबिहारी गुप्त 'राकेश,' डॉ० भगवत्स्वरूप मिश्र, डॉ० रमेशकुमार शर्मा तथा डॉ० मक्खनलाल शर्मा। पं० तिवारी के इस अभिनन्दन समारोह की व्यवस्थापक समिति के मन्त्री डॉ० मक्खनलाल शर्मा तथा कोषाध्यक्ष डॉ० ओंकारप्रसाद माहेश्वरी थे। समारोह की सफलता के लिए स्वागत-समिति के सदस्य बधाई के पात्र हैं।

बादशाह खान :

महात्मा गाँधी के निकट के सहयोगियों में से जो कुछ थोड़े से लोग आज संसार में महात्मा गाँधी की मान्यताओं को मानते, जानते और प्रचारित करते हैं, उनमें से सीमान्त गाँधी श्री अब्दुलगफ्फार खाँ का नाम सर्वमान्य है। यह बड़े हर्ष का विषय है कि भारत सरकार ने गाँधी जन्म शताब्दी के अवसर पर सीमान्त गाँधी (जिन्हें पठान लोग प्यार से बादशाह खान के नाम से पुकारते हैं) को आमन्त्रित किया है। हमें आशा ही नहीं विश्वास है कि बादशाह खान को कश्मीर घाटी में आकर यहाँ की जनता से सम्पर्क स्थापित करने का अवसर दिया जायगा। हमें सेवा-

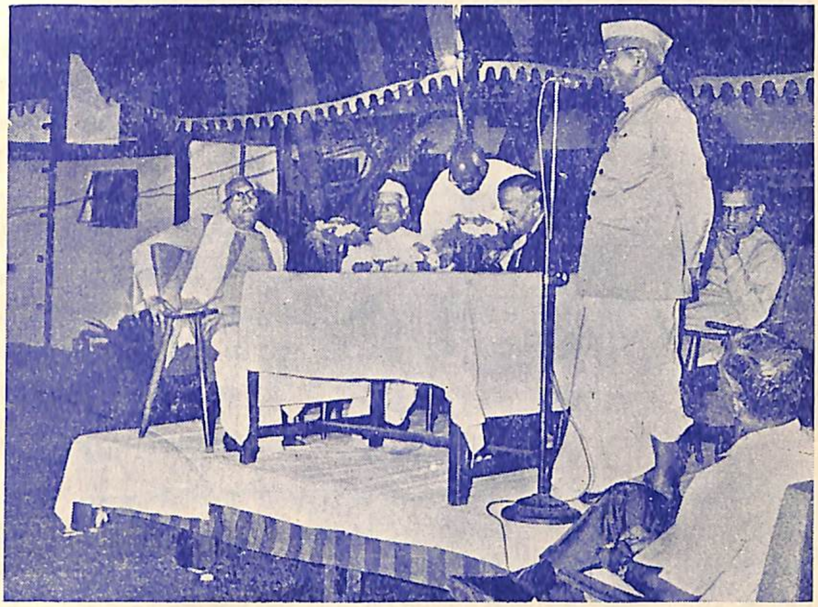

पं० तिवारी के अभिनन्दन समारोह में बोलते हुए, डॉ० बाबूराम सक्सेना। बैठे, हैं :—आचार्य ह० प्र० द्विवेदी, पं० तिवारी, उपराज्यपाल श्रीमान आ० ना० झा तथा आचार्य डॉ० नगेन्द्र नगाइच।

पं० तिवारी के अभिनन्दन-समारोह में उपस्थित कुछ अतिथिगण। सामने की पंक्ति में बायें से दूसरे; श्री भगवानसिंह जी।

ग्राम में सीमान्त गाँधी को बहुत निकट से देखने का सौभाग्य मिला था और उनके व्यक्तित्व की छाप भुलाये नहीं भूलती। देवताओं जैसा विशाल शरीर, मुख पर शिशुओं जैसा भोलापन और फकीरों जैसे सादा लिबास वाले बादशाह खान अपनी निर्भीकता, सरलता, सच्चाई, त्याग तथा सहिष्णुता के लिए परम प्रसिद्ध हैं। शायद लोग यह भूल गए होंगे कि उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में जब जनमत हुआ था, तब उसमें सीमान्त गाँधी तथा उनके लालकुर्ती दल ने भाग नहीं लिया था तथा हिन्दुस्तान अथवा पाकिस्तान में अपने प्रान्त के विलय का प्रचार नहीं किया था। फिर भी पाकिस्तान में विलय के पक्ष में ५१ प्रतिशत मत ही आये थे। यह सब सीमान्त गाँधी के प्रभाव के कारण ही था। हम इस देव पुरुष का बाईस वर्षों बाद भारत में आने पर हार्दिक स्वागत करते हैं।

गाँधी-टेरेलीन-तकली :

भारतवासियों की यह प्रवृति प्रसिद्ध है कि वे औपचारिक-नाम-पूजा को अधिक महत्त्व देते हैं और वास्तविक-कार्य-पूजा से बचते हैं। आज गाँधी जन्म शताब्दी पर जनता और सरकार की ओर से करोड़ों रुपये खर्च किये जा रहे हैं परन्तु महात्मा गाँधी (जिन्हें बड़े-बड़े नेता बड़े गौरव से "फादर आफ़ दि नेशन" के नाम से याद करते हैं) ने क्या कहा था और वे हमसे क्या चाहते थे, इसे पुष्ट शरीर वाले, श्वेत-वस्त्राभिभूषित बड़े-बड़े नेता भी भूल गये हैं। हाल में ही हमने एक गाँधी कैम्प देखा था। कैम्प के सदस्य नायलॉन और टेरेलीन के वस्त्र पहने हुए, बड़ी कठिनाई तथा अरुचि से कालीनों पर बैठे हुए परिसम्वाद में भाग ले रहे थे। प्रत्येक सदस्य को एक-एक तकली और कुछ कातने की रुई भी दी गई थी। कातना किसी को आता नहीं था। कुछ लोग तकली को फिरकनी की तरह घुमाकर मन बहला रहे थे, कुछ लोग रुई को नोच-नोच कर अपनी अरुचि प्रकट कर रहे थे, तथा एकाध सदस्य उस तकली के एक मात्र प्रयोग से, जिसे वे जानते थे, लाभ उठाकर तकली में रुई लगाकर अपना कान खुजा रहे थे। हम यह नहीं कहते की खादी पहनना सबके लिए आवश्यक है या महात्मा गाँधी पर केवल खादी पहनने वालों का ही अधिकार है, परन्तु इस पाखण्ड के हम विरुद्ध हैं कि रूढ़ि परिपालन के लिए गाँधी के नाम पर चर्खे और तकली पर केवल दिखाने के लिए धन व्यर्थ में ही नष्ट किया जाय। आशा है कि गाँधी जी हमारे लिए केवल नाम-पूजा के आलम्बन मात्र नहीं रह जायेंगे। यदि गाँधी जन्म शताब्दी समारोह ने हमें गाँधी की मान्यताओं तथा गाँधी की रचनात्मक कार्य प्रणाली के निकट थोड़ा-सा भी पहुँचाया तो हम समझेंगे कि यह समारोह सफल हुआ।

रामचरितमानस-चतुर्थशताब्दी-समारोह :

ऊपर लिखित समारोह के लिए नागरीप्रचारणी सभा ने पं० कमलापति त्रिपाठी के सभापतित्व में एक समिति गठित की है, जिसने यह निर्णय किया है

कि इस समारोह के लिए एक करोड़ रुपया व्यय किया जाये। हर्ष का विषय है कि इण्डोनेशिया में भी सन् १९७० में रामायण-उत्सव मनाया जा रहा है, जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ का सहयोग भी होगा। बालीद्वीप के प्रोफेसर मन्त्रा ने यह सूचना भी दी है कि इस समारोह में उनके देश के अतिरिक्त वे अन्य सारे देश भाग लेंगे, जिनमें रामायण की परम्परा संस्कृति, साहित्य एवं समाज में प्रचलित है। हमें आशा है कि सभी हिन्दी प्रेमी इस महोत्सव में सहयोग प्रदान करेंगे।

कश्मीर-हिन्दी-संस्थान :

पिछले मास श्रीनगर में कश्मीर के हिन्दी प्रेमियों द्वारा एक संस्था स्थापित की गई, जिसका नाम रखा गया कश्मीर-हिन्दी-संस्थान। संस्थान के उद्देश्यों में कश्मीरी हिन्दी तथा लद्दाखी भाषाओं के साहित्यों का पारस्परिक अनुवाद तथा प्रकाशन भी है। कश्मीर की प्राचीन संस्कृति एवं प्राचीन ग्रन्थों पर मौलिक शोध कार्य भी इसके उद्देश्यों में है। कश्मीरी का एक प्रामाणिक कोष भी संस्थान प्रकाशित करेगा। कश्मीर के गण्यमान्य कवि, नाटककार, कहानीकार, समालोचक, भाषाविद् तथा शिक्षक इस संस्थान के संस्थापकों में से हैं। संस्थान के पदाधिकारी हैं—

निदेशक—पं० श्रीकण्ठ कौल तोषखानी, **सह निदेशक**—डॉ० रमेशकुमार शर्मा; **मंत्री**—श्री रत्नलाल 'शान्त', **कोषाध्यक्ष**—श्री मोतीलाल क्यमू। आशा है कि संस्थान को अपने उद्देश्यों की पूर्ति में सफलता मिलेगी।

उपलब्धियाँ :

विभाग के प्राध्यापक डॉ० भूषणलाल कौल को "महजूर तथा 'नवीन' के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन" शोधकार्य पर पीएच० डी० की उपाधि मिलने के उपलक्ष्य में विभाग में एक समारोह किया गया। समारोह का सभापतित्व जम्मू मण्डल के विभागाध्यक्ष आचार्य पं० जगन्नाथ तिवारी ने किया। समारोह में विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा अन्य पदाधिकारी एवं विभाग के शिक्षकों तथा विद्यार्थियों द्वारा बधाई दी गई।

अहिन्दी भाषी प्रान्तों के लिए छात्रवृत्ति प्राप्त करने वाले निम्नलिखित दो अनुसन्धित्सुओं ने अपना शोधकार्य समाप्त करके पीएच० डी० की उपाधि के लिए अपने शोध प्रबन्ध परीक्षार्थ प्रस्तुत कर दिये हैं—

१. मोहनलाल बाबू (यशपाल तथा राँगेयराघव की कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन)

२. अमरनाथ 'प्रशान्त' (आजाद तथा दिनकर के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन)

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से छात्रवृत्ति प्राप्त करने वाली अनुसन्धित्सु श्रीमती सन्तोष कुकरू को शोध प्रबन्ध (प्रेमचन्द तथा प्रसाद के नारी पात्रों का

पं० तिवारी के अभिनन्दन-समारोह में बोलते हुए विभागाध्यक्ष डॉ० रमेशकुमार शर्मा । बैठे हैं : आचार्य ह० प्र० द्विवेदी, पं० तिवारी तथा सभापति दिल्ली के उप-राज्यपाल श्रीमान आ० ना० झा ।

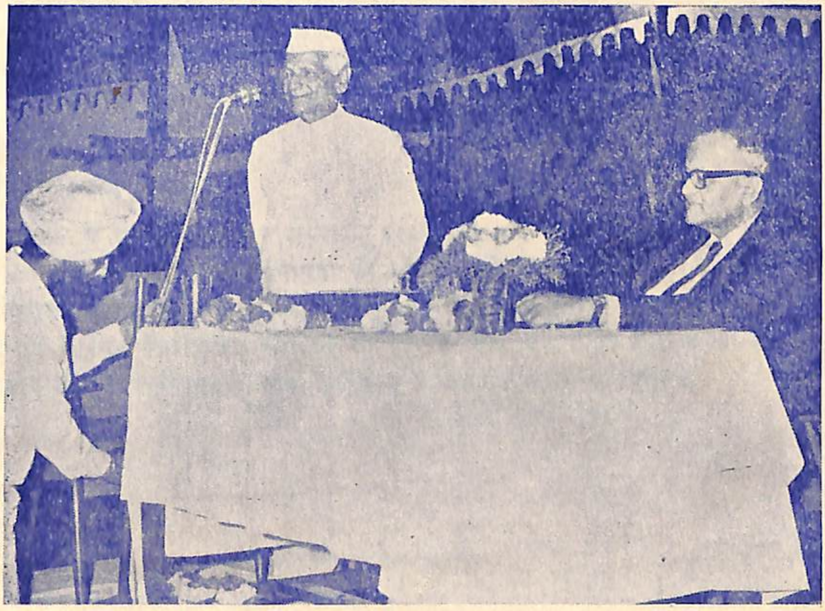

अभिनन्दन समारोह में बोलते हुए पं० जगन्नाथ तिवारी

तुलनात्मक अध्ययन) अंकित हो रहा है तथा आशा है कि अक्टूबर १९६९ तक वह भी परीक्षार्थ प्रस्तुत कर दिया जायगा।

"पं० श्रीराम शर्मा—व्यक्तित्व तथा कृतित्व" पर शोधकार्य के लिए कुमारी नीनाकौल को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की २५०) रुपये प्रतिमास की छात्र-वृत्ति प्रदान की गई है। श्री त्रिलोकीनाथ गंज ने "कश्मीरी भाषा—उद्गम तथा विकास" पर शोधकार्य आरम्भ कर दिया है। श्री गंजू इस विषय पर 'वितस्ता' में लेख लिखते आये हैं। आशा की जाती है कि उनका यह शोधकार्य कश्मीरी भाषा विषयक भ्रान्तियों को दूर करके उसे उसके सच्चे परिप्रेक्ष्य एवं स्वरूप में उपस्थित कर सकेगा। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से विभाग को पुस्तकों के क्रय के लिए बीस हजार रुपये का अनुदान इस योजना काल के लिए मिला है।

१९६८ एम० ए० की परीक्षा में कश्मीर मण्डल में प्रथम स्थान प्राप्त करने के हेतु वीना डुल्लू को पं० जगन्नाथ तिवारी स्वर्णपदक प्रदान किया जायेगा। इसी प्रकार पूर्वार्द्ध की परीक्षा में विभाग में प्रथम आने के हेतु विजय मोहनी कौल को रजतपदक प्रदान किया जायेगा।

१९६८-६९ के लिए हिन्दी परिषद् के पदाधिकारी निम्नलिखित हैं—

उपसभापति—डॉ० भूषणलाल कौल।

मन्त्री—विजय मोहनी कौल एम० ए० उत्तरार्द्ध (१९६८ की पूर्वार्द्ध की परीक्षा में सबसे अधिक अंक प्राप्त किये)

उपमन्त्री—पुष्पलता दर एम० ए० पूर्वार्द्ध (पूर्वार्द्ध के विद्यार्थियों में बी० ए० में हिन्दी में सबसे अधिक अंक प्राप्त किये)

उपमन्त्री सांस्कृतिक कार्यक्रम—बसन्ती जाला एम० ए० उत्तरार्द्ध।

कोषाध्यक्ष—मोहनलालदास एम० ए० पूर्वार्द्ध। परिषद् के संरक्षक, अध्यक्ष तथा सभापति पदेन होते हैं।

कश्मीर विश्वविद्यालय :

प्रदेश के राज्यपाल ने एक अध्यादेश द्वारा जम्मू तथा कश्मीर मण्डलों में दो अलग-अलग विश्वविद्यालयों की स्थापना की घोषणा इसी मास में की है। कश्मीर विश्वविद्यालय में सह-उपकुलपति तथा प्रभारी उपकुलपति श्री नूरुद्दीन नियुक्त हुए हैं। हम विभाग के विद्यार्थियों और शिक्षकों की ओर से उन्हें बधाई देते हैं। आशा है कि विभाग तथा विश्वविद्यालय उनके कार्यकाल में उत्तरोत्तर उन्नति करेगा।

विजयमोहिनीकौल
मंत्री
हिन्दी परिषद्
परास्नातक हिन्दी विभाग,
कश्मीर मण्डल, जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर, कश्मीर।

वितस्ता
(सितम्बर १९६९)

सम्पादक :
डॉ० रमेशकुमार शर्मा,
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय,
अमरसिंहबाग, श्रीनगर, कश्मीर (भारत)

●

सहायक :
डॉ० भूषणलाल कौल
नीना कौल एम० ए० (अनुसंधित्सु)
विजयमोहिनी कौल एम० ए० (उत्तरार्द्ध)
पुष्पलता दर एम० ए० (पूर्वार्द्ध)

●

प्रकाशक :
हिन्दी परिषद्
हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय
अमरसिंहबाग, पो० नसीमबाग, श्रीनगर,
कश्मीर (भारत)।

एक प्रति—२ रु०

खण्ड ५ अंक १

राष्ट्र-गान

जन-गण-मन अधिनायक जय हे !
भारत भाग्य विधाता
पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा, द्राविड़ उत्कलबंग,
विंध्य हिमाचल यमुना गंगा उच्छल जलधितरंग,
तव शुभनामे जागे, तव शुभ आशिष माँगे,
गाए तव जय गाथा,
जन-गण मंगलदायक जय हे, भारत भाग्य विधाता
जय हे, जय हे, जय हे,
जय, जय, जय, जय हे !!

VITASTA

Journal of the Department of Hindi, University of Kashmir, Amarsinghbag, Srinagar, Kashmir, INDIA.

Vol. IV SEPTEMBER 1969 No. 1

मुद्रक : आगरा फाइन आर्ट प्रेस, राजा मण्डी, आगरा–२